एक छत, दो अजनबी:
दीवारों के दरमियान

'एक ऐसे पति की आवाज,
जो अपने ही घर में सुना तो जाता है पर समझा नहीं जाता'

डॉ. आलोक भारद्वाज

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Dr. Alok Bhardwaj 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE .com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7825-741-4

Cover design: Aafiya Saifi
Typesetting: Namrata Saini

First Edition: June 2026

एक ऐसे पति की आवाज़, जो अपने ही घर में
सुना तो जाता है पर समझा नहीं जाता।

समर्पण

हर उस पत्नी के नाम—
जो हर बात पर नाराज़ रही
और पति हर नाराज़गी में उसी को मनाता रहा...

जिसने उसके घर को घर भी रखा
और उसे उसमें मेहमान भी।

भूमिका

कुछ शादियाँ एक दिन में नहीं टूटतीं। वे रोज़ सुबह चाय के साथ थोड़ा-थोड़ा फीकी पड़ती हैं, रात के बिस्तर पर थोड़ा-थोड़ा दूर खिसकती हैं और एक दिन अचानक पता चलता है कि एक ही छत के नीचे दो लोग रह तो रहे हैं, मगर अब एक-दूसरे के साथ नहीं रह रहे।

अगर आपने कभी अपने ही घर में अजनबी होने का दर्द महसूस किया है, तो यह किताब आपके लिए है। अगर आपने कभी बात शुरु करने से पहले माहौल तौला है, अगर आपने कभी किसी अपने के 'ठीक हूँ' में पूरा तूफ़ान सुना है, अगर आपने कभी साथ रहते हुए भी भीतर एक लंबा अकेलापन जिया है, तो आप इस किताब को सिर्फ़ पढ़ेंगे नहीं, पहचानेंगे।

एक छत, दो अजनबी — दीवारों के दरमियां किसी एक पति, एक पत्नी या एक घर की कहानी नहीं है। यह उन लाखों रिश्तों की आवाज़ है, जो बाहर से अब भी सलामत दिखते हैं पर भीतर से रोज़ थोड़ा-थोड़ा घिसते रहते हैं। यहाँ शेर हैं, ग़ज़लें हैं, चुप्पियाँ हैं, कटाक्ष हैं, रसोई की भाप है, अधूरी रातें हैं और वह प्रेम भी है, जो मरता नहीं, बस अपना नाम बदलकर 'दर्द' हो जाता है।

हो सकता है यह किताब आपको असहज करे। हो सकता है यह आपको राहत दे। हो सकता है इसमें आपको अपना घर, अपना बिस्तर, अपना डाइनिंग टेबल, अपना मौन दिखाई दे… और हो सकता है कि यही वह किताब हो, जो आपकी उस भावना को शब्द दे दे, जिसे आप बरसों से सिर्फ़ ढो रहे थे।

अब पन्ना पलटिए... कहानी शुरु नहीं होगी, वह आपके भीतर से उठेगी।

अनुक्रमाणिका

भाग-1 पहले जैसा कुछ भी नहीं 1
१. पहले जैसी बात नहीं...3
२. ख़ामोशी परोसी मिलती है...4
३. मेरी पसंद ग़ैर-ज़रूरी 5
४. बीच की थोड़ी-सी दूरी 6
५. मुलाक़ात नहीं होती...7
६. हर सुबह सफ़ाई देनी पड़ी...8
७. घर में मैं किरायेदार हूँ जैसे...9
८. हँसी का एक कटोरा टूट गया 10
९. वही घर है, पर वैसा कहाँ!...11
१०. घर मगर चलता जाता है...12
११. दरवाज़ा, चम्मच, जज़्बात...13
१२. दिल का कमरा बदल गया 14
१३. तेरे होते हुए भी तन्हाई...15
१४. दरवाज़ा खुला, भीतर मनाही 16
१५. दरवाज़ा खुला रखता हूँ...17
कुछ चुनिंदा शे’र...18
1. एलबम के पीछे लिखा हुआ नाम 28

भाग-2 रोज़ की रंजिशें...33
१. रोज़ की अदालत 35
२. महीने के आखिर-सा 36
३. मेज़ पर बैठी हुई रंजिश...37
४. स्क्रीन के बिन भी दूरी 38
५. मुझसे भी मेरा घर अलग...39

६. निभाने की थकन 40
७. अजब फ़ासले 41
८. मेरी आदत का मुक़दमा 42
९. छुट्टी नहीं लेने देता 43
१०. दिल का ज़वाल 44
११. दिल की हालत पर्दे के पीछे 45
१२. दरवाज़ा खुला, इजाज़त कम 46
१३. दुख को भी नए कपड़े 47
१४. दो घरों की सीमा 48
१५. पिता जल्दी नहीं टूटते 49
१६. पुराने गुनाहों की किताब 50
१७. दवा थी, दुलार नहीं 51
१८. जले हुए जुमले 52
१९. घर में मौसम विभाग 53
२०. स्क्रीन ने मुलाक़ात छीन ली 54
२१. मुझे केवल कमाई से न पढ़ो 55
२२. लोग जगह बदलते हैं 56
२३. यादें भी बराबर नहीं होतीं 57
२४. घर ईंटों से कम, टिप्पणियों से बना हो 58
२५. रिश्ता साँस लेता है 59
२६. इसी मरम्मत में हमारा घर चला करता है 60
कुछ चुनिंदा शे’र 61

भाग-3 ख़ामोशी की दीवारें 79

१. बोलने से ज़्यादा गुज़रना 81
२. मेज़ पर बैठी हुई दूरी 82
३. बीचोबीच बहुत-सी अनकही 83
४. दरवाज़ा बंद नहीं होता 84
५. चुप रहने में भी कुछ बताना होता है 85

६. उसी ट्रे में मोहब्बत नहीं आती अब 86
७. ऑफ़लाइन नज़दीक़त न हुई 87
८. तेरे सन्नाटे की हद 88
९. कितना कम चाहिए था...89
१०. वक़्त कमरे में था, रिश्ते में नहीं...90
११. कम लड़े और बहुत दूर निकल आए 91
१२. तेरी आँख में मेरा पता गुम..92
१३. दवा मिल गई, दुआ न मिली 93
१४. खुला दर, स्वागत नहीं 94
१५. हमदम समझना रह गया 95
१६. वही फ़्रेम है, आवाज़ नहीं 96
१७. इस घर को ज़रा 'बोलना' दे 97
१८. चुप्पियों ने कई चेहरे छीन लिए...98
१९. एक ठंडी-सी उम्र 99
कुछ चुनिंदा शे'र..100
2. रात के बाद वाला कमरा..114

भाग-4 रसोई, किस्तें और कटाक्ष 119

१. मुहब्बत से नहीं, चम्मचों से निभाना है 121
२. क़िस्तों की गिनती..122
३. मेरी ख़ामोश थकन 123
४. भाव से रिश्ते तय हैं 124
५. शादी कोई नौकरी है 125
६. मेरी नीयत में कमी..126
७. मुझे टुकड़ों में बाँट रखा है 127
८. मोहब्बत भी कई बार ग़रीब होती है..128
९. फ्रेम के पीछे कर्ज़ की तारीख़ 129
१०. तेरे लहजे से डरता हूँ..130
११. चैन का कमरा न मिला...131

१२. उधड़ी हुई धड़कन 132
१३. यही चीज़ आदमी खा जाती 133
१४. दिल की गिनती किसी खाते में नहीं चढ़ती 134
१५. कटु वाक्यों का डिब्बा... 135
१६. हर बची चीज़ बचती नहीं 136
१७. मेरी नींदों की रसीद... 137
१८. घर से लाया था खाना 138
१९. अधूरा निकला 139
२०. कटाक्षों की आँच.. 140
२१. पनाह न मिले... 141
२२. बहुउद्देशी सामान 142
२३. प्यार रसोई में गुम हुआ है.. 143
कुछ चुनिंदा शे'र... 144

भाग-5 जो बचा है, वही दर्द है.. 159

१. भीतर से खंडहर 161
२. बहुत देर से बैठी है यहाँ शाम 162
३. साथ रहना भी जुदाई 163
४. दर्द वहीं जाग रहा था... 164
५. क्या यही लोग हैं? 165
६. तेरी करवट पूरे मकां जितनी 166
७. तेरे रहते हुए भी इंतज़ार... 167
८. हम बहुत पहले गिरते 168
९. घर में ज़्यादा तन्हा... 169
१०. माथे पे हथेली न आई 170
११. जो बचाना था, वही बोझ हुआ... 171
१२. मेरे दर्द का कमरा 172
१३. तकलीफ़ ही सच्ची साथी है 173
१४. तेरी दूरी ने मौसम को दिसंबर कर दिया.............................. 174

१५. तू शब्दों में टूटी, मैं नज़र में टूटा 175
१६. दर्द वज़नी था 176
१७. थकी हुई उम्मीदें 177
१८. जंग लगी कील 178
१९. रस्में ही आख़िरी भाषा 179
२०. टूटा रिश्ता अचानक नहीं टूटता 180
२१. तकलीफ़ में भी एक रौनक थी 181
२२. अंदरूनी आँसू 182
२३. दर्द ने साफ़ नज़र दी 183
२४. दो नरम लफ़्ज़ काफ़ी थे 184
२५. दर्द नहीं बदलते 185
२६. एक फीकी-सी दुआ 186
२७. दर्द में तहज़ीब बची है 187
कुछ चुनिंदा शे'र 188
3. जब तू सो जाती है 207

भाग-6 एक छत, दो अजनबी 213

१. घर का पता खो-सा गया 215
२. घर में भी अजनबी हैं 216
३. रूहें सफ़र करती रहें 217
४. चाय ठंडी हुई, शाम भी ठंडी 218
५. बस हमारे ही चेहरों पे उजाला कम था 219
६. हमसे सँभाला नहीं जाता 220
७. कब हुआ ये सब? 221
८. घर का असल चेहरा 222
९. आधी-आधी ही यहाँ हर चीज़ 223
१०. एक-दूजे को जीना सीखा ही नहीं 224
११. तेरी आँख से यक़ीं उठ गया 225
१२. इतनी बड़ी ख़ामोशी 226

१३. दर्द भी अजीब वफ़ा निभाता है 227
१४. घर में रहकर भी घर नहीं मिलता 228
१५. घर के सामान ख़ामोश गवाह 229
१६. तेरी मौजूदगी का मातम 230
१७. रूह को पनाह नहीं 231
१८. कुछ रिश्ते बच्चों से चलते हैं 232
१९. दिल का कमरा न गर्मा सका 233
२०. दिल की खिड़कियों पे जाले 234
२१. रिश्ते की अंतिम अवस्था 235
२२. सेवा और प्यार में फ़र्क़ 236
२३. एक पुकार और सही 237
२४. हर मोड़ पे कम मिल पाए 238
२५. एक हलचल-सी बची 239
२६. काग़ज़ी खुशियाँ 240
२७. एक हँसी भी न बँटी 241
२८. तेरे नाम में थोड़ा घर 242
२९. बहुत सभ्य तरीक़े से जुदाई 243
३०. हार आधी तेरी थी, आधी मेरी 244
३१. ख़ामोशी से किया जाता है 245
३२. पुकार की दहलीज़ 246
३३. घर बचाते हुए 247
कुछ चुनिंदा शे’र 248
4. दीवारों के दरमियां 269

भाग-1

पहले जैसा कुछ भी नहीं

१.
पहले जैसी बात नहीं

सुबह की चाय में अब वो बात नहीं पहले जैसी,
तेरी आवाज़ में भी मुलाक़ात नहीं पहले जैसी।

मैं दफ़्तर से तो वही हूँ जो पहले लौट आता था,
पर इस घर में मेरी कोई औक़ात नहीं पहले जैसी।

एक ही बिस्तर है, तकियों की जगह भी वही है,
बस तेरी करवट में अब रात नहीं पहले जैसी।

पुरानी फोटो में जो हँसी तेरे होठों पे थी कभी,
वो अलमारी में है, हालात नहीं पहले जैसे।

मैंने हँसकर भी कई बार ये घर बचाया है,
पर तेरे तानों में वो नरमी नहीं पहले जैसी।

तू सामने है मगर दिल को यक़ीं ही नहीं आता,
इतनी पास में भी तू साथ नहीं पहले जैसी।

२.
ख़ामोशी परोसी मिलती है

पहले तेरी 'सुनो' में बड़ी रोशनी हुआ करती थी,
अब उसी एक लफ़्ज़ में पूछताछ सी लगती है।

मैं जो घर आते ही बैग रख के तुझे ढूँढ़ा करता था,
अब वही बैग रखूँ तो थकान पहले मिलती है।

डाइनिंग टेबल पे सब्ज़ी भी वही, रोटी भी वही,
बस तेरे साथ बैठूँ, तो ख़ामोशी परोसी मिलती है।

रिमोट को लेकर जो हँसते-हँसते झगड़ते थे हम,
अब वही छोटा-सा किस्सा भी सियासत लगता है।

तेरी आँखों में जो शिकवा है, मैं पढ़ लेता हूँ,
पर मेरी आँख का पानी तुझे आदत लगती है।

मैंने मज़ाक में कई बार कहा— "कुछ तो बोलो"!
तूने हँसकर भी कहा— "अब क्या ज़रूरत लगती है!"

३.
मेरी पसंद ग़ैर-ज़रूरी

तू कभी चाय में चीनी मेरे हिसाब से रखती थी,
अब मेरी पसंद भी घर में ग़ैर-ज़रूरी लगती है।

मैंने तेरे लिए बाज़ार से फूल भी लाकर देखे,
तूने बस पूछा— "ये ख़र्चा भी ज़रूरी था?"

पहले तेरा गुस्सा भी मुझे प्यार-सा लगता था,
अब वही गुस्सा कई दिनों की बीमारी लगती है।

हम जो बरसात में छत पर कभी भीग आया करते थे,
अब छत टपकती है, तो ठेकेदार याद आता है।

मैंने तेरी ख़ामोशी को भी इज़्ज़त दे रखी है,
पर मेरी चुप्पी तुझे अक्सर चालाकी लगती है।

४.
बीच की थोड़ी-सी दूरी

ये जो घर है, कभी इसमें मेरी हँसी भी रहती थी,
अब तो कमरे में मेरी आहट भी धीरे चलती है।

तूने जो बात नहीं की, वो मुझे सबसे ज़्यादा लगी,
तेरे कहे से कम, अनकहे से ज़्यादा ठेस लगती है।

मैंने बच्चों के सामने तुझको कभी कुछ न कहा,
घर की इज़्ज़त भी अजीब चीज़ है, आँसू पीती है।

सोफ़े के दोनों किनारों पे हम बैठे भी रहते हैं,
बीच की थोड़ी-सी दूरी उम्र भर जैसी लगती है।

वो जो तेरे बालों में कभी मैं उँगली फेरता था,
अब वही हाथ महीने भर बिल भरते रहते हैं।

तेरे गुस्से का भी इक ढंग था, इक अपनापन था,
अब तो हर बात में बस मुझे छोटा करना रहता है।

कितना आसान था पहले तुझे मना लेना मुझको,
अब तो 'ठीक है' कह दे, वही जीत लगती है।

५.

मुलाक़ात नहीं होती

वो जो शामों में तेरे साथ बालकनी तक जाता था,
अब वहीं खड़ा हूँ, मगर कोई बात नहीं होती।

तेरे हाथों की महक रोटी में आया करती थी,
अब नमक ठीक भी हो, तो भी मुलाक़ात नहीं होती।

मैंने कितनी बार पुरानी तस्वीरें खोल के देखीं,
तूने देखा भी, तो बस इतना कहा— “तुम्हें फुर्सत बहुत होती है ”।

तेरा गुस्सा भी मुझे तेरे क़रीब रखा करता था,
अब तेरी बेरुख़ी में कोई शिकायत भी नहीं होती।

हमने शादी को निभाया भी बड़ी तमीज़ से है,
दर्द इतना है कि अब उसपर अदालत भी नहीं होती।

मुझको अब डर भी नहीं तेरे अचानक चुप होने से,
डर तो तब था, जब तेरी हर चुप्पी में मोहब्बत होती।

६.
हर सुबह सफ़ाई देनी पड़ी

मैंने सोचा था कि शादी से थकान आधी होगी,
पर यहाँ तो हर सुबह फिर से सफ़ाई देनी पड़ी।

तूने पूछा भी नहीं दिन मेरा कैसा गुज़रा है,
बस ये पूछा कि सब्ज़ी क्यों वही फिर ले आया हूँ।

पहले माथे पे शिकन देख के पानी देती थी,
अब मैं बीमार भी पड़ जाऊँ, तो चादर सीधी रहती है।

हम जो हँसते थे किसी फ़िल्म के छोटे-से डायलॉग पर,
अब वही टीवी हमारे बीच गवाही देता है।

तेरे तानों में जो चुभन है, वो नई बात नहीं, लेकिन
पहले मरहम भी तेरी आँख से मिल जाया करता था।

७.

घर में मैं किरायेदार हूँ जैसे

तू जो पहले मेरे आते ही दरवाज़े तक आती थी,
अब तो कुंडी भी कई बार मैं ख़ुद खोलता हूँ।

तेरी पलकों पे कभी मेरी थकान उतरती थी,
अब मैं थककर भी रहूँ, तुझको बस फ़र्श दिखता है।

मैंने तेरे लिए कितनी ही छोटी चीज़ें छोड़ी हैं,
अपनी जिद, अपने जवाब, अपने कई सच छोड़े हैं;

अब तेरे पास भी बैठूँ तो लगे मेहमान हूँ जैसे,
घर मेरा है, मगर इस घर में मैं किरायेदार हूँ जैसे।

तू जो पहले मेरी कमियों पे मुस्काती थी हल्के से,
अब वही कमियाँ तेरे रोज़ के भाषण बन गईं।

रात को नींद नहीं आती, तो पानी पी लेता हूँ;
तेरे पहलू में पुरानी-सी वो राहत नहीं मिलती।

तेरे गुस्से को भी मैं तेरी थकावट समझ लेता,
काश तू मेरी थकन को भी बहाना समझ लेती।

तेरी चुप्पी की भी आवाज़ बहुत तेज़ हुई है अब,
मैं जो कुछ बोल न दूँ, इस डर से धीमे चलता हूँ।

८.
हँसी का एक कटोरा टूट गया

कभी रज़ाई के नीचे हम बहुत बातें करते थे,
अब वही रज़ाई है बस दो किनारे हो गए।

तूने कितनी सहजता से मेरी आदत बदल डाली,
अब मैं घर आके भी घर में ठहरने से डरता हूँ।

पहले तेरी नाराज़ी भी मुझे अपनेपन की लगती थी,
अब तेरी सीधी बातें भी इशारों से चोट करती हैं।

हमने मिलकर जो ख़रीदा था वो डाइनिंग सेट अभी है,
बस उस मेज़ पे हँसी का एक कटोरा टूट गया।

मैंने तेरी तरफ़ देखा, तो तूने परदा ठीक किया,
जैसे मेरी नज़र भी अब तुझे नागवार लगती है।

कितनी अजीब बात है, लड़ाई कम हो गई घर में,
क्योंकि अब हममें किसी को भी समझाना नहीं आता।

९.
वही घर है, पर वैसा कहाँ!

तूने पूछा था कभी— “मेरे बिना रह लोगे क्या?”
मैंने हँसकर कहा था— “तुम बिन घर कैसा होगा?”

अब वही घर है, वही दीवार, वही खिड़की, वही दर,
बस तेरा दिल नहीं, और मेरा दिल भी वैसा कहाँ!

सुबह अख़बार के पीछे जो मैं चेहरा छुपा लेता हूँ,
वो पढ़ाई कम, तेरा मौसम टालना ज़्यादा है।

तेरे आगे मैं बहुत कमज़ोर नहीं दिखना चाहता,
इसलिए हँसता हूँ, जब दिल में हज़ारों बातें हों।

कुछ पुरानी-सी महक अलमारी में रहती अब भी,
शायद साड़ी में नहीं, मेरी उम्मीदों में बची है।

१०.
घर मगर चलता जाता है

मैंने तुझको कभी ऊँची आवाज़ में पुकारा भी नहीं,
फिर भी मेरे नाम से तेरी भौंहें चढ़ जाती हैं।

वो जो पहले तेरे माथे की लटें ठीक किया करता था,
अब वही हाथ महीने की रसीदें समेटता है।

तूने शादी को बहुत ठीक से संभाला होगा, मगर
इस संभालने में कहीं हम दोनों गिरते जाते हैं।

मैंने कई बार कहा— "चलो कहीं बाहर चलते हैं"
तूने हर बार कहा— "घर के काम कहाँ ख़त्म हुए?"

अब तेरे पास भी बैठूँ, तो मोबाइल जीत जाता है,
मैं तो बस बीच-बीच में नोटिफ़िकेशन-सा हूँ।

वक़्त ने हमको जुदा कम, एक जैसा ज़्यादा किया,
तू भी चुप रहती है अब, मैं भी कम बोलता हूँ।

तेरी आँखों में थकावट है, मेरी आँखों में पानी,
दोनों ही ठीक नहीं हैं, घर मगर चलता जाता है।

११.
दरवाज़ा, चम्मच, जज़्बात

पहले इतवार हमारे लिए छोटा पड़ जाता था,
अब वही इतवार बड़ा बोझ लगा करता है।

मैं जो पहले तेरे साथ बाज़ार निकल जाया करता था,
अब तेरा ‘चलो’ भी अक्सर बस सामान के लिए होता है।

कभी तूने ही मेरी शर्ट का बटन टाँका था हँसकर,
अब मेरी पूरी शख़्सियत उधड़ी हो, तो क्या फ़र्क़!

तेरे गुस्से से बचने को मैं बातें बदल देता हूँ,
जैसे बच्चे के आगे कोई टूटा खिलौना छुपाए।

मैंने घर में कई चीज़ें धीरे रखना सीख लिया है,
दरवाज़ा, चम्मच, जज़्बात— सब आवाज़ करते हैं।

अब जो हँसी भी आती है, तो अपने ऊपर आती है,
मैंने शादी को भी किस शौक़ से मंज़ूर किया था।

१२.
दिल का कमरा बदल गया

मैंने तकिये के कवर तक तेरी पसंद के रख छोड़े,
बस मेरे हिस्से की नींद किसी ने वापस न की।

पहले तेरे कदमों से मुझे घर का पता चलता था,
अब तेरे चलने से बस ग़ुस्से को दिशा मिलती है।

मैंने कितनी दफ़ा चाहा कि तुझे बाँहों में भर लूँ,
पर तेरे चेहरे पे पहले से ‘मत छुओ’ लिखा होता है।

वो जो पहले तू मेरी थाली में कौर रख देती थी,
अब वही हाथ बस चीज़ों की जगह बताते हैं।

इस क़दर बदल गए हम, कि यक़ीं भी नहीं आता
घर का नक़्शा तो वही है, दिल का कमरा बदल गया।

१३.
तेरे होते हुए भी तन्हाई

तेरी आँखों में कभी मैं ही मैं रहा करता था,
अब वहाँ बिजली का बिल, दूध, सफ़ाई, गैस है।

मैंने सोचा था मुहब्बत उम्र के साथ गहरी होगी,
ये न सोचा था कि उसकी जगह दिनचर्या ले लेगी।

तू जो पहले मेरी बातें बिना बोले समझ जाती थी,
अब समझ भी ले, तो अक्सर अनसुना कर देती है।

हमने लड़ना भी सभ्य ढंग से सीख लिया आखिर,
तू तंज़ कस देती है, मैं पानी पी लेता हूँ।

मेरी तनख़्वाह से घर चलता है, ये सच होगा, मगर
तेरी नाख़ुशी से मेरा सीना बंद हो जाता है।

तू अगर पहले-सी हँस दे, तो मुझे डर लगता है,
अब खुशी भी इस घर में कुछ अनहोनी लगती है।

मैंने माना कि मैं अच्छा पति पूरा बन न सका,
तू भी पहले-सी मेरी हमदम नहीं रह पाई।

तेरे होते हुए भी मैंने तन्हाई कमाई है,
ये हुनर शादी ने दिया, दुनिया ने इतना न दिया।

१४.
दरवाज़ा खुला, भीतर मनाही

अब तेरे 'ठीक है' में कोई ठहराव नहीं मिलता,
जैसे दरवाज़ा खुला हो, मगर भीतर मनाही हो।

मैंने यादों के सहारे कई रातें काटी हैं,
तूने तकियों के सहारे कई रिश्ते टाले हैं।

तेरे चेहरे पे कभी मैं घर लौट आया करता था,
अब वही चेहरा मुझे फिर दफ़्तर याद दिलाता है।

हमने बच्चों के लिए कितनी हँसी जमा कर रखी,
अपने हिस्से की मगर रोज़ कटौती होती रही।

मैं जो पहले तुझे छूकर सुकून पाया करता था,
अब तेरा पास होना भी इजाज़त माँगता है।

तेरी चुप्पी में भी पहले एक पुकार होती थी,
अब तेरी चुप्पी बस दीवार बनी रहती है।

१५.
दरवाज़ा खुला रखता हूँ

कुछ भी पहले-सा नहीं, ये बात अब मान ली मैंने,
फिर भी तेरे लिए दरवाज़ा खुला रखता हूँ।

तेरे गुस्से को मैं हर रोज़ नया नाम नहीं देता,
कभी थकान कहता हूँ, कभी हालात समझता हूँ।

पुराने मग में चाय बना के मैं बैठा रहता हूँ,
शायद तू आज पुराने दिनों जैसी आ जाए।

हमने रिश्ते को बचाया भी, घसीटा भी बहुत है,
इसलिए टूटे नहीं हम, बस चमकते भी नहीं।

तू अगर पास नहीं भी है, तेरी आदत तो यहीं है,
मैं इसी आदत से अब घर का सन्नाटा भरता हूँ।

मैंने दिल से तो तुझे आज तलक रुख़सत न किया,
बस तेरी याद को अब दर्द से अलग रखता हूँ।

जो भी पहले-सा नहीं, उसमें तू अकेली तो नहीं,
मैं भी पहले-सा कहाँ हूँ, ये सज़ा दोनों की है।

कुछ चुनिंदा शे’र

१.

पहले तू मेरी थकान का चेहरा पढ़ लिया करती थी,
अब मैं ‘ठीक हूँ’ कह दूँ, तो बात वहीं ख़त्म हो जाती है।

२.

एक वक़्त था, तेरी हँसी घर का सबसे अच्छा सामान थी,
अब वही घर है, बस थोड़ा कम बसा हुआ।

३.

मैं आज भी तेरे लिए दरवाज़ा धीरे से खोलता हूँ,
आदतें तलाक़ नहीं लेतीं, चाहे दिल ले लें।

४.

पहले तेरी नाराज़गी में भी मेरा हिस्सा होता था,
अब तेरे गुस्से में बस मेरी गलती होती है।

५.

हमने साथ रहकर ये हुनर बख़ूबी सीख लिया—
बात कम करनी है और आहट ज़्यादा सुननी है।

६.

पुरानी तस्वीरें मुझसे अब भी झूठ नहीं बोलतीं,
बस तू उन्हें देखकर जल्दी से एलबम बंद कर देती है।

७.

तेरी 'ठीक हूँ' और मेरी 'कुछ नहीं' ने मिलकर
इस घर की पूरी कहानी बहुत छोटी कर दी।

८.

पहले मैं तेरे बालों में हाथ फेरकर सोता था,
अब पंखे की आवाज़ से रात काटता हूँ।

९.

मैंने शादी से सुकून माँगा था, हिसाब नहीं,
पर घर ने मुझे हर महीने समझदार बना दिया।

१०.

तेरे ताने भी पहले इतने बुरे नहीं लगते थे,
क्योंकि उनके बाद एक मुस्कान मिल जाया करती थी।

११.

अब मैं चाय में चीनी कम रखता हूँ,
ज़िंदगी पहले ही काफ़ी मीठी नहीं रही।

१२.

हम दोनों ने घर तो बचा लिया जैसे-तैसे,
बस उसमें रहने वाले दो लोग कम पड़ गए।

१३.

तेरे सामने रोना मुझे आज भी छोटा लगता है,
इसलिए नल खोल देता हूँ, मैं बाथरूम में।

१४.

तू पहले मेरी बात पूरी सुना करती थी,
अब मेरे वाक्य तेरे चेहरे तक पहुँचते-पहुँचते टूट जाते हैं।

१५.

रात को तेरी पीठ देखकर सो जाना भी एक रिश्ता है,
हर प्यार छूकर नहीं, कई चुप रहकर निभते हैं।

१६.

मैंने कई बार सोचा कि ज़ोर से कुछ कह दूँ,
फिर बच्चों का कमरा याद आ गया।

१७.

तेरा गुस्सा मुझे अब भी याद रखता है,
शायद यही हमारे बीच बची हुई वफ़ा है।

१८.

पहले हम खाना खाते थे, बातें साथ चलती थीं,
अब बस निवाले जाते हैं और चुप्पी बैठी रहती है।

१९.

मैंने तेरी नज़र में अच्छा बनने की बहुत कोशिश की,
घर की नज़र में बस समय पर कमाने वाला बन पाया।

२०.

तूने पूछा नहीं कि मैं उदास क्यों हूँ,
शायद तुझे यक़ीन है कि वजह फिर तुम ही हो।

२१.

एक वक़्त था जब तेरे पास बैठना इलाज था,
अब वही बैठना लक्षण बढ़ा देता है।

२२.

हमने रिमोट पर झगड़ते-झगड़ते ये जाना,
चैनल बदलने से कहानी नहीं बदलती।

२३.

तेरी आवाज़ अब भी मेरे नाम पर रुकती है,
बस पहले उसमें प्यार होता था, अब काम होता है।

२४.

मैंने अपने जवाब छोटे कर लिए हैं,
घर में लंबी बातों की उम्र बहुत कम है।

२५.

पहले तू मेरी कमीज़ सीधी कर देती थी,
अब मेरी नीयत तक टेढ़ी लगती है तुझे।

२६.

हम साथ रहते हैं, ये समाज को बहुत सुकून देता है,
दिल को क्या मिलता है, ये किसी फ़ॉर्म में नहीं पूछा जाता।

२७.

मैंने तेरे लिए अपना गुस्सा बहुत बार पी लिया,
शायद इसलिए मेरा ब्लड प्रेशर और प्यार दोनों बढ़े।

२८.

तू पहले मुझे देखकर दिन का हाल बदल देती थी,
अब मौसम बदल जाए, तेरे चेहरे पर फ़र्क़ नहीं पड़ता।

२९.

इस घर में सबसे पुरानी चीज़ शायद मेरा इंतज़ार है,
बाक़ी फर्नीचर भी अब कई बार बदल चुका।

३०.

पहले तू रूठती थी, तो मनाने में मज़ा आता था,
अब तू ख़ामोश होती है, तो साँस अटक जाती है।

३१.

मैंने कई साल तेरे मूड के हिसाब से बिताए हैं,
कैलेंडर में इतने मौसम कहाँ लिखे होते हैं।

३२.

तेरे बिना रहना मुश्किल था, ये सच था कभी,
अब तेरे साथ रहना भी आसान नहीं रहा।

३३.

मैं जब हँसता हूँ, तो बच्चे खुश हो जाते हैं,
तू जब हँसती है, तो मुझे पुराने दिन याद आते हैं।

३४.

हमने मोहब्बत को धीरे-धीरे कामों में बाँट दिया,
तभी शायद वह किसी सूची में गुम हो गई।

३५.

पहले तेरा हाथ पकड़ना बेहद आम बात थी,
अब वही हरकत करने से पहले मौसम देखता हूँ।

३६.

मैंने तेरी ख़ामोशी को बहुत इज़्ज़त दी है,
काश तू मेरी थकन को भी बदतमीज़ी न समझती।

३७.

तेरे 'जो करना है करो' में जितनी ठंडक होती है,
उतनी तो दिसंबर की रात में भी नहीं होती।

३८.

पुराना मग, पुराना गीत, पुरानी रज़ाई — सब हैं,
बस जो पहले-सा नहीं है, वही सबसे ज़रूरी था।

३९.

हम दोनों बहुत समझदार हो गए शादी के बाद,
तभी शायद दिल की कई बचकानी खुशियाँ मर गईं।

४०.

आज भी कभी-कभी तेरी तरफ़ देखता हूँ चुपके से,
जैसे अपना ही घर कहीं और बस गया हो।

४१.

कुछ भी पहले-सा नहीं, ये बात कड़वी सही,
पर मैं आज भी तुझे 'मेरी' कहकर ही दुखी होता हूँ।

1.
एलबम के पीछे लिखा हुआ नाम

आज बहुत दिनों बाद
मैंने अलमारी के ऊपरी खाने से
वो पुराना एलबम उतारा।

उसी पर जमी धूल को
मैंने ऐसे फूँक कर हटाया
जैसे किसी बीते हुए मौसम की लाश पर से
चादर उठाई जाती है।

पहला पन्ना खोला,
तो एक जोड़ा मुस्कुरा रहा था—
लड़का मैं था,
और लड़की तुम।
या शायद
हम दोनों के वे संस्करण,
जो शादी के बाद मर जाने वाले थे
और जिन्हें किसी फोटोग्राफर ने
फ्लैश की रोशनी में
अमर समझ लिया था।

तुम्हारे हाथों की मेहँदी
उस तस्वीर में आज भी गहरी है,
और मेरा यक़ीन भी।
कितनी अजीब बात है—
तस्वीरों में रंग बचे रहते हैं,
रिश्तों में नहीं।

मैं एक-एक पन्ना पलटता गया—
कहीं तुम हँस रही थी,
कहीं मैं तुम्हें देख रहा था,
कहीं दोनों के बीच इतनी नज़दीकी थी
कि आज की पूरी ज़िंदगी भी
उसे नाप नहीं सकती।

फिर एलबम के पीछे
नीले पेन से लिखा एक नाम मिला—
"आलोक ..."
बाक़ी स्याही फैल गई थी।
जैसे तुमने मेरा नाम पूरा लिखा हो,
मगर वक़्त ने बीच में पानी गिरा दिया हो।

मैंने उँगली से उस फैली हुई स्याही को छुआ।
ऐसा लगा,
जैसे मेरे अपने ही नाम का जनाज़ा
धीरे-धीरे मेरी उँगलियों पर उतर आया हो।

कभी तुम मेरा नाम
इतनी मोहब्बत से लिखती थी
कि साधारण काग़ज़ भी
इकरार हो जाता था।
अब वही नाम
घर में सिर्फ़ ज़रूरत के वक़्त लिया जाता है—
“सुनो, दूध ले आना!”
“सुनिए, बिल भरना है!”
“ज़रा ये देख लीजिए!”

मेरा नाम
पहले तुम्हारे होठों पर रहता था,
अब कामों की सूची में रहता है।

मैंने एलबम बंद नहीं किया…
बहुत देर तक
उसी आख़िरी पन्ने पर बैठा रहा,
जहाँ पीछे लिखा नाम
आधे से ज़्यादा मिट चुका था।
और…

मुझे पहली बार समझ आया—
रिश्ते अचानक ख़त्म नहीं होते,
वे पहले तस्वीरों में सिमटते हैं,
फिर एलबम में,
फिर अलमारी में,
फिर धूल में,

और आख़िर में
सिर्फ़ पीछे लिखा हुआ एक नाम बचता है
जिसे कोई पढ़ तो सकता है,
मगर जी नहीं सकता।

मैंने एलबम वापस रख दिया।
बहुत सलीके से।
ठीक वैसे ही,
जैसे हमने अपनी शादी रखी हुई है—
ऊपर के खाने में,
नज़रों से दूर,
धूल के नीचे,
और इस उम्मीद के साथ,
कि कोई मेहमान आए
तो गलती से खुल न जाए

भाग-2

रोज़ की रंजिशें

१.
रोज़ की अदालत

सुबह-सुबह ही तेरे चेहरे पे शिकन होती है,
चाय से पहले हमारे घर में बहस होती है।

मैंने बस इतना कहा— “चीनी थोड़ी कम रखना!”
तूने समझा कि मेरी नीयत में कमी होती है।

तेरे ‘तुमसे न हो पाएगा’ में अजब दर्द भी है,
और कुछ ऐसी हँसी भी, जो चुभती बहुत है।

मैं जो अख़बार में मुँह छुपा के बैठा रहता हूँ,
वो खबर कम, तेरी आवाज़ से बचत होती है।

दिन तो दफ़्तर में किसी तरह निकल जाता है, मगर
घर में आते ही वही रोज़ की अदालत होती है।

२.
महीने के आखिर-सा

तेरी बातों में हिसाबों का धुआँ लगता है,
मैं कमाऊँ भी, तो कम ही क्यूँ लगा करता है।

मैंने तनख़्वाह रखी मेज़ पे चुपचाप तेरे आगे,
तूने पूछा— “बस इतना?”, तो बुरा लगता है।

घर चलाने की थकन मुझको भी आती होगी,
पर मुझी से ही हर इक बोझ बड़ा लगता है।

तेरे लहजे में ‘तुम्हारे घर वाले’ आता है जब,
अपना होना भी मुझे आधा-सा लगता है।

मैंने खर्चों की सूची में कई सपने काटे,
तूने फिर भी कहा— “तुमसे न घर चला लगता है”।

तेरी नाख़ुशी का बजट है कि ख़त्म होता नहीं,
मैं तो महीने के आखिर-सा जिया करता हूँ।

३.
मेज़ पर बैठी हुई रंजिश

डाइनिंग टेबल पे रखी रोटी ठंडी रहती है,
और हम दोनों में इक चुप्पी गरम रहती है।

मैंने पूछा भी नहीं, दिन तेरा कैसा गुज़रा,
तूने मौका ही कहाँ दिया कि बात बनती।

तू नमक कम कहे, मैं मिर्च ज़रा ज़्यादा कह दूँ,
बस इसी बात पे फिर शाम भरन रहती है।

बच्चे खाकर उठें, बर्तन भी धुल जाएँ, लेकिन
मेज़ पर बैठी हुई रंजिश वहीं रहती है।

तेरे सामने निवाला भी गले से कम उतरता है,
जैसे हर कौर पे तेरी कोई टिप्पणी रहती है।

४.
स्क्रीन के बिन भी दूरी

रिमोट हाथ में क्या आया, झगड़ा हो जाता है,
एक चैनल पे भी घर दो धड़ों में बँट जाता है।

मैं जो न्यूज़ लगा दूँ, तो तुझे शोर बुरा लगता,
तू जो सीरियल लगा दे, मैं भी चुप रह जाता हूँ।

हमने कितनी ही बहसें इसी बटन पे हारी हैं,
छोटा-सा रिमोट भी किस्मत-सा लग जाता है।

तू कहे— "तुमको तो बस अपनी पसंदें प्यारी हैं..."
मैं कहूँ— "हाँ, पर मुझे तुम भी…", और रुक जाता हूँ।

हँसी आती है कभी अपने ही हालातों पर,
घर में लोकतंत्र है, निर्णय तेरा ही होता है।

मैंने सीखा है कि कुछ हारें ज़रूरी होती हैं,
इसलिए रिमोट तुझे देके भी, मैं जीत जाता हूँ।

टीवी बंद हो भी जाए, तो कहाँ झगड़ा रुकता है,
हमारे बीच तो अब स्क्रीन के बिन भी दूरी है।

५.
मुझसे भी मेरा घर अलग

तेरी बातों में ससुराल का सफ़ा खुल जाता है,
हर पुरानी-सी शिकायत फिर नई लगती है।

मैंने बस माँ का ज़रा हाल जो पूछ लिया रात,
तूने समझा कि तेरी कद्र कहाँ होती है।

तेरे ‘तुम्हारे घर वाले’ में अजब ठंडक होती है,
जैसे मुझसे भी मेरा घर अलग कर देती हो।

मैं जो बीच का बना रहना बहुत चाहता हूँ,
दोनों जानिब से वही आदमी ग़लत ठहरता।

रिश्तेदारों की नहीं, तेरी नज़र की मार लगी,
घर के अंदर ही मेरा पक्ष कमज़ोर हुआ।

६.
निभाने की थकन

सालगिरह आई, तो हम दोनों को यादें आईं,
तुझको भूल हुई मेरी, मुझे ख़ामोशी तेरी।

मैंने फूलों की जगह रास्ते में सब्ज़ी ले ली,
हाँ! यही ग़लती थी, किस्सा बहुत लंबा निकला।

तूने पूछा— "तुम्हें तारीख़ भी याद नहीं रहती?"
मैंने सोचा था कि चेहरा तो याद रहता है!

केक क्या लाता, मैं शाम भर तुझे मनाता फिरा,
मेरी जेबों से ज़्यादा दिल खाली होता गया।

तेरी आँखों में पुराने बरसों की चमक खोजी,
पर वहाँ बस मेरी लापरवाही लिखी मिली।

हमने तस्वीर तो खिंचवाई, मगर चेहरों पे!
मुस्कुराहट कम, वहाँ निभाने की थकन ज़्यादा थी।

७.

अजब फ़ासले

एक ही बिस्तर है, दो जानिब पड़े रहते हैं,
रात भर हम भी अजब फ़ासले नापते हैं।

मैंने करवट से तुझे छू भी दिया गलती से,
तूने ऐसे खींच ली बाँह कि मैं जाग गया।

तेरी पीठों से भी लहजा बहुत कुछ कहता है,
अब तो चेहरे की ज़रूरत भी नहीं पड़ती है।

मैंने तकिये से कई रातें गले लगकर काटीं,
तू मेरे पास थी, पर मेरी नहीं लगती।

सुबह अलार्म ने उठाया, न कि तेरी आवाज़ ने,
प्यार की छुट्टी थी शायद, दफ़्तर खुला रहता है।

८.

मेरी आदत का मुक़दमा

तू कहे— “तुम हमेशा ऐसे ही रहते हो!”
मैं कहूँ— “हाँ”, तो वही बात नई हो जाती।

मेरे जूते का यहाँ कोना भी दोषी ठहरता,
मेरी आदत का मुक़दमा रोज़ चलता रहता है।

गीला तौलिया, खुला ढक्कन, बत्ती जलती छोड़ी…
मेरी छोटी-सी कमी पर्वत बनी रहती है।

मैंने सच मान लिया है कि मैं व्यवस्थित कम हूँ,
पर तेरा लहजा तो अलमारी से भी कड़ा निकला।

कभी हँसकर भी कहा जा सकता था— “ठीक करो!”
तूने हर सीख को ताने में बदल रखा है।

मैंने घर को तेरी मर्ज़ी से बहुत सीखा है,
बस तूने मुझको कभी सीखते हुए देखा नहीं।

९.
छुट्टी नहीं लेने देता

दफ़्तर से थका-हारा जो मैं घर लौटता हूँ,
तेरा चेहरा मुझे छुट्टी नहीं लेने देता।

तू ये पूछे न, कि दिन, रास्ता कैसा रहा आज,
सीधे गैस, सब्ज़ी, बिल, दूध पे बहस ले आती है।

मैंने जूते भी उतारे नहीं, इलज़ाम आ गया—
"घर की चिंता तो तुम्हें बिल्कुल नहीं होती!"

हक़ीक़त ये है कि इस घर से ही भागा जाता हूँ,
और इसी घर की तरफ़ शाम को लौटा भी हूँ।

मेरी थकन को अगर तू ज़रा ठहरने देती,
शायद मैं भी तेरी थकन का कोई साथी होता।

१०.
दिल का ज़वाल

तेरी चाय में शिकायत का उबाल आता है,
मेरी चुप्पी में भी इक कड़वा सवाल आता है।

नमक थोड़ा-सा इधर कम, उधर ज़्यादा निकला,
एक छोटी-सी डिश से बड़ा बवाल आता है।

तूने पूछा— "तुम्हें घर की समझ भी है कि नहीं?"
मैंने सोचा— "तुझे मेरी थकन का ख़याल आता या नहीं?"

रोज़मर्रा की खरोंचें ही लहू खींच रही हैं,
अब तो बड़े घावों पे भी कम मलाल आता है।

मैं जो हँस देता हूँ अपनी ही ग़लतियों पर कभी,
तू समझती है कि मुझको नहीं कोई मलाल आता है।

तूने कितनी सहजता से मुझे 'तुम तो ऐसे हो' कहा,
बस उसी दिन से मैं खुद से भी सवाल करता हूँ।

घर में हर रोज़ वही छोटी लड़ाइयाँ हैं, मगर
इन्हीं कतरे-कतरे में दिल का ज़वाल आता है।

११.
दिल की हालत पर्दे के पीछे

मेहमानों के लिए हम दोनों कमाल के निकले,
घर के अंदर वही लोग बहुत थके हुए थे।

तूने चाय भी बनाई, मैंने मुस्कान भी रखी,
जैसे दुख कोई नहीं, हम बहुत भले लोग हैं।

उनके जाते ही तेरा चेहरा बदल जाता है,
मेरा भी ‘जी’ से सीधा ‘हाँ, बताओ’ होता है।

हम निभाने में बहुत माहिर हुए शादी के बाद,
दिल की हालत तो मगर पर्दे के पीछे ही रही।

कितनी अजीब बात है, इज़्ज़त बची रहती है,
और उसी वक़्त मोहब्बत कहीं कम हो जाती है।

१२.
दरवाज़ा खुला, इजाज़त कम

तेरे ‘ठीक है’ में आजकल बहुत ठंडक है,
जैसे दरवाज़ा खुला हो, पर इजाज़त कम हो।

मैंने पूछा कि ‘नाराज़ हो?’ तू बोली, ‘नहीं’
और उसी ‘नहीं’ में पूरी शिकायत बैठी थी।

घर में कुछ शब्द बड़े ख़तरनाक हुए हैं अब,
‘ठीक’, ‘जैसा’, ‘रहने दो’, ‘तुम्हारी मर्ज़ी’— सब।

मैंने सीखा है कि कम बोलना बेहतर होगा,
क्योंकि हर बात पे मतलब नया निकला करता।

तू जो आँखों से जवाबात दिया करती है अब,
मेरे लफ़्ज़ों की तो जैसे ज़मानत ही नहीं।

हम जो चुपचाप चले जाते हैं कमरों की तरफ़,
वो लड़ाई नहीं होती, वही हार होती है।

१३.
दुख को भी नए कपड़े

त्यौहार आए, तो घर में रोशनी भी आई थी,
बस हमारे ही दरमियां कुछ धुआँ बाकी था।

मैंने दीपक भी जलाए, तूने मिठाई भी रखी,
पर जो पहले-सी दुआ थी, वो कहाँ आती है।

तेरे संग फोटो में हम खूब सजधज कर बैठे,
जैसे दुख को भी नए कपड़े पहनाए हों।

रात पूजा के बाद फिर वही चेहरे उतर गए,
भगवान भी शायद हमारे घर में चुप रहते।

शोर बाहर का बहुत था, मन हमारा फिर भी सूना,
कितनी चीज़ें बची रहती हैं रिवाजों के सहारे।

१४.
दो घरों की सीमा

रिश्तेदारों की ख़बर पूछते ही तेवर बदले,
तेरे लहजे में पुरानी कोई आग जागी थी।

मैंने बहन का जो ज़िक्र किया, तूने वो ही कहा,
‘तुम्हें अपने रिश्तेदार ही बहुत, घर में कहाँ फ़ुर्सत है”।

मैंने समझा कि ये मसला भी पुराना होगा,
पर तेरी आँख में हर बार नया काँटा निकला।

घर के नक़्शे में कई कमरे बने होंगे, मगर
कुछ जगह दिल में भी रिश्तों की लड़ाई रखी।

तूने मुझको ही कटघरे में खड़ा कर डाला,
जैसे मैं आदमी कम, दो घरों की सीमा हूँ।

मेरा अपराध यही है कि मैं सबका रहा हूँ,
और इसी कोशिश में तेरे लिए कम पड़ता हूँ।

१५.
पिता जल्दी नहीं टूटते

बच्चों के सामने हम दोनों बड़े अच्छे निकले,
उनके सोते ही मगर फिर वही चेहरे आए।

मैंने आवाज़ दबा ली कि कहीं सुन न लें वो,
तूने लहजा न दबाया, बस शब्द चुन लिए।

घर के छोटे-से दिलों में दरारें न पड़ें,
इसलिए मैंने कई सच्चाइयाँ पी रखी हैं।

तूने बोला— "तुम बदलते ही नहीं हो बिलकुल!"
मैंने सोचा— "हाँ, पिता जल्दी नहीं टूटते!"

हमने बच्चों की हँसी के लिए समझौते किए,
वरना हम दोनों में बोलचाल कहाँ बाकी थी।

१६.
पुराने गुनाहों की किताब

तू पुराने ही गुनाहों की किताब खोलती है,
मैं नए दिन को भी बीता हुआ महसूस करूँ।

मैंने माना कि कभी देर से घर आया था मैं,
तूने उस एक ही रात को बरसों पहन लिया।

मेरी हर भूल को तारीख़ समेत याद रखा,
तेरी हर चोट को मैंने तो धुआँ समझा था।

तूने किस दिल से कहा— "तुम तो वही आदमी हो"
मैं तो कोशिश में बहुत-सा पुराना छोड़ चुका।

रोज़ एक केस पुराने सबूतों से खुलता है,
घर है या मेरा चरित्र यहाँ जाँचा जाता है।

मैं सफ़ाई भी दूँ, तो वो नई चूक बनती है,
मेरी चुप्पी भी यहाँ कब बरी होने देती।

इतना भी सच नहीं हूँ कि कभी हार न मानूँ,
बस मुझे हर बार एक ही अदालत न दे।

१७.
दवा थी, दुलार नहीं

मैं जो बीमार पड़ा, तूने दवा रख तो दी थी,
पर तेरे हाथ में पहले-सा दुलार कम था।

तूने पूछा भी नहीं कि दर्द कहाँ तक पहुँचा है,
बस ये पूछा कि कल दफ़्तर में छुट्टी लोगे क्या।

मैंने बुख़ार में भी तेरे तेवर पढ़ लिए थे,
तेरी चिंता से ज़्यादा तुझको असुविधा लगी।

हँसी आई कि मैं शादी में मरीज़ कम निकला,
यहाँ आराम भी माँगो, तो हिसाब आने लगे।

फिर भी सच है कि दवा तेरे ही हाथों से ही ठीक लगे,
दिल अभी इतना भी रूठा नहीं कि मान न ले।

१८.

जले हुए जुमले

तेरे तानों में भी बर्तनों की छनक होती है,
रसोईघर से ही अक्सर मेरी हार निकलती।

मैंने पूछा— "कुछ मदद कर दूँ?"

तूने हँसकर कहा— "रहने दो, तुमसे ज़्यादा गंदगी फैलती है"।

मैंने प्याज़ भी काटे, तो तुझे ऐतराज़ रहा,
मेरी कोशिश भी यहाँ ठीक से देखी कब गई!

तेरे संग काम करूँ, तो भी गलत ठहरता हूँ,
दूर बैठूँ, तो कहे— "तुमको फ़िक्र ही नहीं!"

घर की रसोई में बस खाना नहीं पकता रोज़,
कई जले हुए जुमले भी वहीं बनते हैं।

फिर भी तेरे हाथ की रोटी में कुछ ऐसा है,
लड़ते-लड़ते भी मैं घर देर से छोड़ नहीं पाता।

१९.
घर में मौसम विभाग

तेरा मूड अगर सुबह से ही बिगड़ जाए, तो फिर
पूरा दिन घर में धूप भी सावधान चलती है।

मैंने जुराब अगर सोफ़े पे रख दी गलती से,
शाम तक उसकी मिसालें कई सुननी पड़तीं।

तेरे चेहरे पे जो मौसम हैं, मैं पहचान गया हूँ,
अब तो बादल से पहले मुझे बारिश लगती है।

मैं भी दिनभर तेरे तेवर से बचा करता हूँ,
जैसे बच्चा किसी अध्यापक के मूड से बचे।

हँसी इस बात पे आती है कि मैं शौहर होकर
घर में मौसम विभाग-सा जिया करता हूँ।

२०.
स्क्रीन ने मुलाक़ात छीन ली

तेरे हाथों में मोबाइल है, मेरी आँख में ख़ालीपन,
अब तो स्क्रीन ने भी हमसे मुलाक़ात छीन ली।

मैंने कुछ कहना चाहा, तूने कहा— “एक मिनट!”
वो एक मिनट कई बरसों में बदल जाता है।

तेरे स्टेटस पे मुस्कुराहट बड़ी साफ़ दिखती है,
घर में वही चेहरा इतने बोझ तले क्यूँ है?

मैं भी फोन में छुपा लेता हूँ अपनी चुप्पी अब,
आदमी जब न सुना जाए तो ऑनलाइन होता है।

हम जो एक-दूसरे से दो क़दम पर बैठे हैं,
चैट की दूरी भी हमसे कभी-कभी कम लगती।

पास रहकर भी जो बात न बन पाए हमसे,
वो इमोजी में कहाँ दर्द-ए-दिल समझाता है।

२१.
मुझे केवल कमाई से न पढ़ो

तेरे तानों में मेरी तनख़्वाह का ज़िक्र आता है,
जैसे मुझसे नहीं, नोटों से मोहब्बत तय हो।

मैं जो कम हूँ, तो ये घर मुझसे बड़ा लगता है,
और मैं ज़्यादा भी हो जाऊँ, तो कमी रहती है।

तू कहे— "फलां के शौहर ने ये चीज़ दिलवाई है"
मैं जो चुप हो जाऊँ, अंदर बहुत कुछ टूटे।

मुझको मेहनत पे नहीं, तेरी तुलना पे दुख है,
मैं कोई आदमी हूँ या कोई ऑफ़र-लेटर हूँ?

फिर भी जेबों से पहले दिल ही तेरे आगे रखा,
काश! तूने भी मुझे केवल कमाई से न पढ़ा होता।

२२.
लोग जगह बदलते हैं

झगड़ा होकर भी घर पूरा बिखरता कब है,
बस चीज़ें अपनी जगह, लोग जगह बदलते हैं।

तू रसोई में चली जाती है, मैं बालकनी तक,
हम दोनों अपने-अपने दुख को हवा देते हैं।

बर्तन धीमे से रखे जाते हैं उस रात यहाँ,
दरवाज़े कम, साँसें ज़्यादा ज़ोर से बंद होतीं।

मैंने पानी भी खुद उठ के पिया है कई बार,
झगड़े के बाद गिलासों में भी संकोच होता है।

तूने लाइट बुझाई, तो लगा बात ख़त्म हुई,
पर अँधेरे में ही सबसे लंबी बहसें चलतीं।

सुबह होने पे हम दोनों सामान्य भी लगते हैं,
जैसे कुछ टूटा न हो, बस रात कठिन निकली हो।

कितनी चालाक है ये शादी निभाने की कला,
आदमी टूट भी जाए, तो वही दिखता कम है।

२३.
यादें भी बराबर नहीं होतीं

पुरानी फोटो को तूने जो यूं देखा ठंडे से,
मुझको समझ आया कि यादें भी बराबर नहीं होतीं।

मैंने पूछा— "ये जगह याद है?" और तूने कहा— "होगी!"
मेरे अंदर का बहुत शोर वहीं बैठ गया।

तेरी हँसी उसी तस्वीर में अब भी रखी है,
घर में लाता हूँ, तो माहौल बिगड़ जाता है।

मैंने एलबम को बड़ी देर सीने से लगाया,
तूने धूल झाड़ी और रख दिया ऊपर जाकर।

कितना मुश्किल है पुराने दिनों को छू लेना,
जब नया दुख भी उसी घर में पनपता रहता है।

२४.
घर ईंटों से कम, टिप्पणियों से बना हो

कुर्सी टेढ़ी हो, परदा ज़रा उलझा रह जाए,
तू उसे सीधा करे, मुझको भी तिरछा बोले।

दरवाज़े की चरमराहट पे भी ताना आता है,
जैसे हर शोर की जड़ मेरी ही लापरवाही हो।

घर की चीज़ों को तू मुझसे ज़्यादा समझती है,
मैं भी इस घर में कई साल से रखा हूँ मगर।

मैंने लैंप ठीक किया, तूने कहा— "चलो, अच्छा!"
उस 'अच्छा' में भी तारीफ़ से ज़्यादा तरस था।

कितनी छोटी-छोटी चीज़ें हमें काट रही हैं,
जैसे घर ईंटों से कम, टिप्पणियों से बना हो।

फिर भी सच ये है कि तेरे हाथ लगे कमरों में
मेरी बेतरतीबी को भी ठिकाना मिलता है।

२५.
रिश्ता साँस लेता है

रोज़ की इन ही खरोंचों से बदन थकता गया,
दिल ने माना कि बड़ा ज़ख्म नहीं, दर्द तो है।

तू मुझे काटती रही बात-बात पर, लेकिन
मैं भी हर वार को मज़ाक में टालता रहा।

कुछ मोहब्बत भी बची है कि मैं जाता नहीं,
कुछ लाचारी भी कि तू रोकती भी नहीं।

तेरे गुस्से में कहीं मेरी ज़रूरत भी छुपी,
मेरी चुप्पी में भी तेरी ही जगह बाक़ी है।

हम अजनबी तो हुए हैं, मगर पूरे नहीं,
रोज़ की रंजिश में भी रिश्ता साँस लेता है।

२६.
इसी मरम्मत में हमारा घर चला करता है

रोज़ कुछ टूटता है, रोज़ ही जुड़ता भी है,
इसी मरम्मत में हमारा घर चला करता है।

एक ही छत है, मगर बात कई हिस्सों में है,
तू शिकायत में जिये, मैं सफ़ाई में जिया।

सुबह ताना, शाम को चुप्पी, रात को करवट है,
यही दिनचर्या है, यही प्यार का कम रूप बचा।

मैंने सीखा कि बड़ी लड़ाई से कम दुख देती
छोटी-छोटी वही बातें, जो रोज़ दोहराई जाएँ।

तू अगर एक दिन नरमी से मेरा नाम पुकारे,
मैं अभी भी उसी आवाज़ पे पिघल जाऊँगा।

कुछ तो ऐसा है कि अब भी मैं तुझे अपना कहूँ,
वरना रंजिश भी कहाँ रोज़ किसी से होती है।

कुछ चुनिंदा शे’र

१.

सुबह की पहली चाय से पहले ही तेरा माथा तन जाता है,
हमारे घर में सूरज से पहले मूड निकल आता है।

२.

मैंने बस पूछा था— “नाश्ता क्या बनाऊँ? मदद कर दूँ?”
तूने कहा— “रहने दो, तुम्हारी मदद से काम बढ़ता है”।

३.

तेरे ‘तुम कभी नहीं सुधरोगे’ में जो यक़ीन होता है,
उतना तो मुझे अपनी पहचान पर भी नहीं।

४.

चम्मच की खनक से भी तेरे तेवर समझ आते हैं,
अब तो बर्तन भी मुझे ख़बरें सुनाने लगे हैं।

५.

मैंने जूते उलटे रख दिए, तूने पूरा चरित्र पढ़ लिया,
घर में आदतें नहीं, आदमी जज किए जाते हैं।

६.

तेरे ताने अब इतने रोज़मर्रा हो गए हैं,
कभी-कभी मैं उन्हें दीवार की घड़ी समझ लेता हूँ।

७.

डाइनिंग टेबल पर रोटी कम, टिप्पणियाँ ज़्यादा मिलती हैं,
खाना पेट में जाता है, बात दिल में अटकती है।

८.

तेरा ‘बस इतना ही?’ तनख़्वाह से ज़्यादा मुझे काटता है,
नोटों से पहले मैं अपना सम्मान मेज़ पर रखता हूँ।

९.

हमारे घर में नमक कम हो जाए, तो शाम बिगड़ जाती है,
और प्यार कम हो जाए, तो कोई नोटिस नहीं करता।

१०.

मैंने तुम्हारी बात मानकर कई आदतें बदलीं,
बस तुम्हारी नज़र में मेरा पुराना संस्करण ही चलता रहा।

११.

तेरे 'तुम्हारे घर वाले' में एक अजीब दूरी बसती है,
जैसे मैं भी उधर का हूँ, इधर बस किराए पर हूँ।

१२.

रिमोट पे लड़ते-लड़ते हमने ये भी सीख लिया,
एक घर में पसंद अलग हो, तो आवाज़ें ऊँची हो जाती हैं।

१३.

तेरी सीरियल की कहानी से कम उलझी नहीं मेरी ज़िंदगी,
बस मेरा एपिसोड रोज़ लाइव चलता है।

१४.

मैं न्यूज़ देखूँ, तो कहती है— “शोर मत करो!”
तू चुप रहे, तो पूरा घर ख़ुद ब ख़ुद शोर हो जाता है।

१५.

बच्चों के सामने हम दोनों कितने सलीकेदार लगते हैं,
उनके सोते ही असली घर बाहर आ जाता है।

१६.

मैंने कई रातें पानी पीकर ग़ुस्सा निगला है,
शायद इसी वजह से मेरी चुप्पी इतनी भारी है।

१७.

तू पूछती है— “इतनी देर क्यों लगा दी?”
मैं सोचता हूँ— “इतनी जल्दी आकर भी मिला क्या?”

१८.

हमने शादी के बाद सबसे पहले हँसी खोई थी,
बाक़ी चीज़ें तो बाद में धीरे-धीरे गईं।

१९.

तेरे तेवरों का टाइमटेबल अब मुझे याद है,
बस छुट्टी का दिन उसमें आज तक नहीं मिला।

२०.

मैंने पूछा— “कुछ चाहिए?” और तूने कहा— “समझ!”,
काश ये चीज़ ऑनलाइन मँगाई जा सकती!

२१.

तेरे हिसाब से मैं देर से आता हूँ, कम कमाता हूँ,
और अजीब बात ये है कि फिर भी यहीं लौटता हूँ।

२२.

घर के बल्ब, ढक्कन, तौलिया, जूते— सब मेरे खिलाफ़ गवाह हैं,
मैं अकेला आदमी हूँ, मुक़दमा पूरा सामान लड़ रहा है।

२३.

तेरे ‘रहने दो’ में जितनी नाराज़गी होती है,
उतनी तो पूरे झगड़े में भी नहीं होती।

२४.

मैंने कई बार सोचा कि तर्क से बात सँवार दूँ,
फिर याद आया कि यहाँ भावना भी अपील नहीं सुनती।

२५.

तेरी नज़र में मेरी छुट्टी भी आराम नहीं होती,
उस दिन बस घर के और काम खुल जाते हैं।

२६.

मैंने जब भी कहा— “चलो बाहर चलते हैं”
तूने कहा— “घर के काम पहले ख़त्म हों!”

२७.

घर के काम कभी ख़त्म नहीं होते, ये सच है,
पर कुछ रिश्ते इसी इंतज़ार में ख़त्म हो जाते हैं।

२८.

तेरे पास शिकायतों की पूरी अलमारी है,
मेरे पास बस एक चुप्पी है, वही रोज़ पहनता हूँ।

२९.

मैं बीमार पड़ा, तो दवा समय पर मिल गई,
बस जो पहले-सा माथे पर हाथ आता था, वो नहीं आया।

३०.

तेरा ग़ुस्सा घर चलाता है या घर का ग़ुस्सा तुझे,
मैं आज तक ये छोटा-सा सिद्धांत नहीं समझ पाया।

३१.

तूने जब कहा— "फलां के शौहर को देखो…"
मैंने पहली बार खुद को आदमी से कम महसूस किया।

३२.

तुलना बहुत सस्ता हथियार है रिश्तों में,
घाव मगर बहुत महँगा छोड़ जाती है।

३३.

मैंने कभी तेरी रसोई की मेहनत कम नहीं आँकी,
काश तूने भी मेरी कमाई को सिर्फ़ रकम न समझा होता!

३४.

तेरे ताने कभी-कभी इतने रटे हुए लगते हैं,
जैसे शादी के साथ कोई स्क्रिप्ट भी मिली हो।

३५.

एक ही बिस्तर पर सोते हुए भी जीत-हार होती है,
जो पहले करवट ले ले, वही कम आहत होता है।

३६.

तेरी पीठ ने मुझे जितना कुछ सिखाया है,
उतना शायद तेरे चेहरे ने भी नहीं।

३७.

रात को लाइट बुझते ही लड़ाई बंद नहीं होती,
बस शब्द काम छोड़ देते हैं, ख़याल शुरु हो जाते हैं।

३८.

मैंने कई बार तुझसे पहले ‘सॉरी’ कहा है,
सिर्फ़ इसलिए नहीं कि ग़लत था, परघर बचाना था।

३९.

तेरे हिसाब से मैं छोटी-छोटी बातों को समझता नहीं,
मेरे हिसाब से वही छोटी बातें सबसे ज़्यादा दुख देती हैं।

४०.

सालगिरह भूलना गुनाह था, मान लिया मैंने,
पर क्या तारीख़ें ही रिश्ता बचाती हैं?

४१.

मैंने फूल नहीं लाए, सब्ज़ी ले आया था,
घर की ज़रूरत ने कभी-कभी दिल को हरा दिया।

४२.

तेरी आँखों में शिकायत जमा रहती है,
मेरी जेब में छुट्टे, और सीने में बहुत कुछ।

४३.

तेरे 'तुम कभी नहीं बदलोगे' के बाद,
मैंने बदलना नहीं, बस टूटना शुरु किया था।

४४.

मैं हर झगड़े में कुछ कम बोलने लगा हूँ,
शायद उम्र नहीं, शादी आदमी को सिखाती है।

४५.

तेरी चुप्पी के बाद जो घर में आवाज़ बचती है,
वो पंखा नहीं, दिल की घबराहट होती है।

४६.

तेरे ‘मेरे मायके में ऐसा नहीं होता’ में,
मेरी पूरी परवरिश छोटी हो जाती है।

४७.

मैं भी कभी-कभी सोचता हूँ कि सच में मैं इतना बुरा हूँ क्या,
फिर याद आता है कि बच्चे अब भी मुझसे लिपट कर सोते हैं।

४८.

हमारे घर में माफ़ी भी स्थायी हल नहीं रही,
बस अगले झगड़े तक की अस्थायी मरम्मत है।

४९.

तूने कहा— “मेरी बात कभी सुनते ही नहीं”,
मैंने सोचा— “मैं तो तेरी आँखें भी सुनता हूँ!”

५०.

मैंने अपने जवाब छोटे इसलिए नहीं किए कि हार गया,
बस हर शब्द का किराया बहुत भारी पड़ता था।

५१.

तेरा ग़ुस्सा अब इतना जाना-पहचाना है, कि
कभी-कभी उसमें भी मुझे घर की-सी महक आती है।

५२.

अगर मैं मदद करूँ, तो तरीका ग़लत...
अगर न करूँ, तो नीयत ग़लत... मैं बीच में रहता हूँ।

५३.

हम दोनों ही अपने-अपने दुख के विशेषज्ञ हो गए हैं,
इसीलिए शायद एक-दूसरे को कम समझते हैं।

५४.

तेरे ‘जैसा ठीक समझो’ में कोई आज़ादी नहीं होती,
वो बस हार का काग़ज़ होता है, जिसपर दस्तख़त मेरे होते हैं।

५५.

मैंने कई झगड़े सिर्फ़ इसलिए छोड़े हैं,
कि कल सुबह फिर एक ही घर में उठना था।

५६.

तेरे सामने अपनी थकन बताना भी अजीब लगता है,
जैसे किसी अदालत में अपनी ही फ़ाइल माँगना।

५७.

मैंने शादी में साथी ढूँढ़ा था, समीक्षक नहीं,
पर किस्मत ने रिव्यू बहुत विस्तार से लिखवाया।

५८.

घर का हर कमरा मुझे तेरी आवाज़ में जानता है,
मैंने शायद अपना परिचय बहुत कम दिया।

५९.

तेरी शिकायतें भी हक़ से भरी होती हैं,
तभी तो मैं उनसे नफ़रत करके भी भागता नहीं।

६०.

मैंने सोचा था कि बड़ी बातों से घर टूटते होंगे,
फिर समझ आया कि छोटी बातें ही नींव खाती हैं।

६१.

हमारे घर में 'कुछ नहीं' सबसे बड़ा झूठ है,
यही दो शब्द सबसे ज़्यादा सच छुपाते हैं।

६२.

तेरी नाराज़गी का वक़्त कभी तय नहीं होता,
इसलिए मेरा सुकून भी स्थायी नहीं रहता।

६३.

तूने कहा 'तुम्हें मेरी क़दर ही नहीं!'
मैंने उसी रात बहुत देर तक तेरे बर्तनों की आवाज़ सुनी।

६४.

तू चुप हो जाए, तो मैं मज़ाक करने लगता हूँ,
मेरी हँसी भी दरअसल डर की एक शक्ल है।

६५.

रोज़ का झगड़ा भी अब रिवाज-सा लगता है,
जैसे शादी में कुछ बातें निभानी ही पड़ती हैं।

६६.

मैंने तेरे ग़ुस्से को अक्सर तेरी थकन समझा,
काश तूने भी मेरी चुप्पी को घमंड न पढ़ा होता!

६७.

एक ही घर में रहते-रहते हम इतने सभ्य हो गए,
कि अब खुलकर रोना भी बदतमीज़ी लगती है।

६८.

मैं जब बालकनी में खड़ा होता हूँ झगड़े के बाद,
आसमान से ज़्यादा खुद से नज़र मिलाता हूँ।

६९.

तूने कई बार कहा— “मुझसे बात मत करो…”
और मैं उसी वाक्य में पूरा दिन गुज़ार देता हूँ।

७०.

हम दोनों ही शायद सही भी हैं, ग़लत भी,
मगर शादी में फ़ैसला अक्सर प्यार नहीं, थकान करती है।

७१.

तेरी रसोई, मेरी कमाई, बच्चों की हँसी, घर की दीवार—
इन्हीं सबके बीच कहीं हमारा रिश्ता रखा था, मिल नहीं रहा।

७२.

रोज़ की रंजिश ने इतना तो सिखा ही दिया,
किसी को खोने के लिए उसका जाना ज़रूरी नहीं।

७३.

फिर भी सच है कि अगर तू आज नरमी से बुला ले,
मैं सारी शिकायतें छोड़कर ‘हाँ’ ही कहूँगा।

भाग-3

ख़ामोशी की दीवारें

१.
बोलने से ज़्यादा गुज़रना

घर में अब ‘बोलने’ से ज़्यादा ‘गुजरना’ होता है,
एक कमरे से दूसरे तक बस ‘उतरना’ होता है।

तू सामने भी रहे तो कोई मौसम नहीं बदलता,
तेरे होते हुए भी दिन को अकेला होना होता है।

मैंने कितनी दफ़ा चाहा कि तुझे नाम से पुकारूँ,
पर यहाँ हर पुकार को लौट कर मरना होता है।

रात तक आ के भी घर जैसे कहीं दूर ही रहता,
इस जगह में भी मुझे रोज़ ही बेघर होना होता है।

हम जो रहते हैं यहाँ, बस यही काफ़ी समझा गया,
दिल का रिश्ता न सही, साथ तो भरना होता है।

२.
मेज़ पर बैठी हुई दूरी

डाइनिंग टेबल पे आवाज़ें बहुत कम आती हैं,
बस प्लेटों की थकन है, जो सुनाई देती है।

मैं जो पानी तुझे बढ़ा दूँ, तो तू ‘हूँ’ कह देती,
अब यही ‘हूँ’ मुझे पूरी कहानी लगती है।

बच्चे खाते हुए पूछें, तो हम दोनों हँस देते हैं,
घर की सच्चाई हमेशा ही छुपाई जाती है।

तेरी नज़रें भी निवालों की तरह टूट-टूट के गिरतीं,
मेरी चुप्पी भी बड़े अदब से खाई जाती है।

खाना ख़त्म हो भी जाए, तो कहाँ शाम निकलती है...
मेज़ पर बैठी हुई दूरी उठाई नहीं जाती।

३.
बीचोबीच बहुत-सी अनकही

एक ही बिस्तर पे दो थकानें पड़ी रहती हैं,
और बीचोबीच बहुत-सी अनकही रहती हैं।

मैं तुझे छू भी न दूँ, इसका भी ख़याल रखना,
अब मुहब्बत से ज़्यादा एहतियातें ज़रूरी हैं।

तेरी करवट में मुझे रात का लहजा मिलता,
मेरी करवट में बस नींदें उधारी रहती हैं।

तकिये जानें कि कहाँ बात अधूरी छोड़ी थी हमने,
उनमें अब भी कई साँसें फँसी-सी रहती हैं।

सुबह बिस्तर तो समेटा गया तहज़ीब के साथ,
पर जो सिकुड़न थी दिलों में, वही बाकी निकली।

४.
दरवाज़ा बंद नहीं होता

रिश्तेदारों के सामने बड़ी रौनक-सी रहती है,
घर के अंदर वही रौनक उतर जाती है।

तू भी मीठा-सा लहजा लिए बैठी होती है,
मैं भी जैसे किसी और का किरदार बना हूँ।

उनके जाते ही हवा का मिज़ाज बदल जाता,
दरवाज़ा बंद नहीं होता, मगर घर बंद हो जाता।

हमने अदब से बहुत कुछ बचा के रखा दुनिया में,
अपने हिस्से की मगर बात बचाई न गई।

चेहरे पर हँसी, आँखों में बुझा-सा मौसम लेकर,
कितना आसान है लोगों को यक़ीं दिला देना।

५.
चुप रहने में भी कुछ बताना होता है

मैंने पूछा भी, तो तूने सिर हिलाकर टाल दिया,
अब सवालों का भी घर में क्या ठिकाना होगा।

तेरे 'कुछ नहीं' में बहुत कुछ दबा होता है, मगर
मेरे 'ठीक हूँ' का भी चेहरा पुराना होगा।

मैंने मौसम की, ट्रैफ़िक की, महँगाई की बातें कीं,
बस हमारा ही विषय था, जो अनजाना होगा।

कितनी मुश्किल से बचाता हूँ मैं बातों को यहाँ,
जैसे काँचों का कोई ढेर उठाना होगा।

अब तो ख़ामोश भी रह लूँ, तो सुकूँ मिलता नहीं,
क्योंकि चुप रहने में भी कुछ तो बताना होगा।

६.
उसी ट्रे में मोहब्बत नहीं आती अब

सुबह उठते ही यहाँ काम की सूचियाँ मिलती हैं,
नाम लेकर कोई आवाज़ नहीं आती अब।

चाय रख दी गई, कप रख दिया, चम्मच भी रखी,
बस उसी ट्रे में कभी मोहब्बत नहीं आती अब।

मैंने 'शुक्रिया' कहा, तूने बस पर्दा सीधा किया,
इस घर में बात भी अक्सर कहीं टकरा के गिरती है।

हम दोनों काम में इतने तरतीब से रहते हैं,
जैसे रिश्ता नहीं, कोई दफ़्तर संभालते हों।

रोज़मर्रा की सफ़ाई में यही देखा मैंने,
फर्श चमकता है, मगर मन नहीं धुलता अब।

७.
ऑफ़लाइन नज़दीक़त न हुई

अब तुझसे घर में कम, मोबाइल में मुलाक़ात हुई,
पास बैठे रहे, लेकिन कहीं बात न हुई।

मैंने मेसेज में लिखा था— “आज जल्दी आ जाना!”
तूने ‘हूँ’ भेज दिया, शाम भी जज़्बात न हुई।

कभी स्टेटस पे तेरी मुस्कान चमक उठती है,
घर में वही चेहरा मगर राहत न हुई।

मैंने इमोजी में भी ढूँढ़ा था पुराना-सा लगाव,
पर वहाँ भी दिल बना, दिल की शुरुआत न हुई।

कैसी दुनिया है, कि ऑनलाइन तो सब ठीक दिखा,
ऑफ़लाइन दो क़दमों में भी नजदीक़त न हुई।

८.

तेरे सन्नाटे की हद

घर में चलते हुए अब पाँव भी अहिस्ता रखूँ,
तेरे सन्नाटे की हद है कि दरक जाऊँ कहीं।

मैंने दरवाज़ा भी धीरे से बंद करना सीखा,
यहाँ आवाज़ से पहले ही भड़क जाऊँ कहीं।

तेरी ख़ामोशी में इतना तो असर देखा है,
मैं खुद अपनी ही बातों से पलट जाऊँ कहीं।

अब यहाँ हँसना भी सोच-समझ के पड़ता है मुझे,
किसी मज़ाक़ से माहौल में उलझ जाऊँ कहीं।

घर अगर मंदिर-सा होता, तो दुआ ले लेता,
ये जो ठंडा-सा धुआँ है, इसमें घुट जाऊँ कहीं।

९.
कितना कम चाहिए था

बालकनी में मैं कई शाम अकेला खड़ा रहता,
घर के अंदर की हवा से ज़रा बाहर आने को।

नीचे दुनिया में सब अपने-अपने कामों में लगे,
ऊपर हम हैं कि नहीं, बस यही बतलाने को।

तू रसोई में बर्तनों से कोई रिश्ता रखती,
मैं फ़लक से पूछता हूँ दिल को समझाने को।

रात की रेलिंग पे कोहनी टिका के सोचता हूँ,
कितना कम चाहिए था घर को घर कहलाने को।

बस दो नरम से लफ़्ज़, इक नज़र, थोड़ा ठहराव,
और हम उम्र लगा बैठे ये सब पाने को।

१०.
वक़्त कमरे में था, रिश्ते में नहीं

घड़ी चलती रही, हम ठहरे रहे अपने-अपने में,
वक़्त कमरे में था, रिश्ते में नहीं आता था।

मैंने दीवार पे टिककर कई शामें काटीं,
कोई चेहरा था, जो पास होते हुए भी न मिलता।

तेरी आहट भी मुझे अब किसी मेहमान-सी लगे,
जैसे तू इस घर में बस थोड़ी देर को आई हो।

मैंने कमरे में पड़ी कुर्सी से भी बातें कीं,
जब इंसां से न हो पाए, तो सामान सुन लेता है।

घर का सारा ही सलीक़ा अपने स्थानों पे रहा,
बस हमारा ही कहीं होना बिखर जाता था।

११.
कम लड़े और बहुत दूर निकल आए

तेरे चेहरे पे थकन है, मेरे भीतर सन्नाटा,
हम दोनों ही बचे हैं, पर कहाँ ज़िंदा हैं अब!

मैंने तूफ़ान से बेहतर समझी तेरी ये चुप्पी,
अब समझ आया कि इसमें भी कई मलबे थे।

बात होती, तो शायद कुछ दरक कर गिर भी जाता,
चुप रहे, तो जो गिरा वो भी न दिख पाया हमें।

मैंने सोचा था कि कम लड़ना ही बेहतर होगा,
पर ये क्या, कम लड़े और बहुत दूर निकल आए।

अब तो इतना भी नहीं कि तुझे दोषी ठहराऊँ,
हम दोनों ने ही यहाँ धीरे-धीरे हार मानी।

१२.
तेरी आँख में मेरा पता गुम

तेरी अलमारी में तह हैं, मेरी मेज़ पे काग़ज़ हैं,
घर में दोनों की तरफ़ अलग-अलग दुनिया रखी है।

एक ही छत के तले भी ये कमाल होता है,
आदमी साथ रहे और मुलाक़ात न हो।

मैंने कमरों की दूरी को कई बार नापा,
मील कम थे, मगर अहसास बहुत लंबा था।

तेरे हिस्से में सलीक़ा, मेरे हिस्से में इंतज़ार,
यही बाँटकर शायद हमने गृहस्थी जी है।

अब तो घर का हर कोना मुझे पहचानता है,
बस तेरी आँख में मेरा ही पता गुम निकला।

१३.
दवा मिल गई, दुआ न मिली

मैं जो बीमार पड़ा, घर वही चलता रहा चुपचाप,
दर्द मेरा भी यहाँ कोई ख़बर न बना।

तूने दवा तो रखी, वक़्त पे पानी भी रख छोड़ा,
बस तेरे हाथ में पहले-सा असर न रहा।

मैंने बुख़ार में भी चाहा कि तू माथा छू ले,
पर ये चाहत भी यहाँ अब कोई हक़ नहीं रखती।

घर में सेवा भी अजब ढंग से निभाई जाती है,
जिस्म संभल जाए, मगर मन न संभल पाए कहीं।

मुझको तब समझ में आया कि ख़ामोशी कैसी है,
जब दवा मिल गई लेकिन कोई दुआ न मिली।

१४.
खुला दर, स्वागत नहीं

मेरे लौटने पे दरवाज़ा खुला मिलता है,
पर खुला दर ही यहाँ स्वागत नहीं करता अब।

जूते उतरे, बैग रखा, चाबी मेज़ पे रख दी,
सारा क्रम है, मगर उसमें कोई चेहरा नहीं।

मैंने पूछा भी कि 'सब ठीक?' तो तूने बस देखा,
अब नज़र का ही यहाँ उत्तर समझना पड़ता है।

दफ़्तर से घर जो आया, तो लगा… जैसे कहीं
एक थकान और किसी थकान से मिलने आई।

मैं भी कुर्सी पे गिरा, तू भी बरतन में लगी,
घर का हर शख़्स यहाँ अपने-ही कामों में गुम है।

१५.
हमदम समझना रह गया

बच्चों की कॉपियों में हम दोनों के दस्तख़त हैं,
पर हमारी ही कहानी पे सहमति नहीं होती।

पीटीएम, बुख़ार, फ़ीस, यूनिफ़ॉर्म, किताबें… सब हैं…
बस इन्हीं कामों में हमसे बातचीत हुई है।

तेरा 'स्कूल से लेते आना' ही पैग़ाम रहा,
मेरा 'ठीक' ही जवाबों की आख़िरी शक्ल हुआ।

हमने बच्चों के लिए घर को संभाला भी बहुत,
बस इसी फ़र्ज़ में अपना ही हक़ गिरवी रख दिया।

वे हमें माँ-बाप समझें, ये बहुत ज़रूरी था,
हमको एक-दूसरे का हमदम समझना रह गया।

१६.
वही फ़्रेम है, आवाज़ नहीं

पुरानी तस्वीर में हम दोनों बहुत बोलते थे,
अब वही फ़्रेम है, आवाज़ नहीं आती है।

मैंने एलबम से तेरा चेहरा उठाया आँखों तक,
तूने धूल झाड़ी और ऊपर रख दिया चुपचाप।

कितनी आसानी से यादों को तह में रख देती है,
मैं अभी तक उन्हें सीने में दबाए बैठा हूँ।

मैंने पूछा— "कभी लगता है पुराना कुछ वापस?"
तूने खिड़की की तरफ़ देखा, जवाब आया नहीं।

घर में बस तस्वीरें ही हैं, जो हमको जोड़ती हैं,
वरना वर्तमान में तो कोई रिश्ता न मिला।

१७.
इस घर को ज़रा 'बोलना' दे

कभी-कभी मैं नमाज़-सी कोई चुप्पी ओढ़ूँ,
शायद इस हाल पे ऊपर से नज़र पड़ जाए।

घर में भगवान भी होंगे, तो बहुत चुप होंगे…
इतना सन्नाटा है कि घंटी भी सहम जाती है।

मैंने अगरबत्ती जलाई, तो धुआँ तिरछा उठा…
जैसे दुआ भी यहाँ सीधी नहीं हो पाती।

तू पूजा में लगी थी, मैं तुझे देखता रहा,
धर्म बचते रहे, पर मन नहीं मिल पाए फिर भी।

मैंने रब से न दुआ की, न शिकायत कोई की,
बस यही सोचा, कि इस घर को ज़रा 'बोलना' दे!

१८.
चुप्पियों ने कई चेहरे छीन लिए

हम अजनबी तो नहीं थे, मगर अब लगते हैं,
नाम लेकर भी पुकारें, तो संकोच होता है।

तेरा गुज़रना मेरे पास किसी रस्म-सा हुआ,
जैसे घर में कोई चुपचाप दिया जलता हो।

मैंने कमरे में कई बार तुझे देखा भी छुपकर,
जैसे अपने ही नसीब का मैं मेहमान हुआ।

हमने झगड़ों से बचा ली थीं कई ऊँची आवाज़ें,
चुप्पियों ने मगर हमसे कई चेहरे छीन लिए।

अब ये हालत है कि तेरे पास आ बैठूँ भी अगर,
मुझको पहले से ही उठ जाने का अंदेशा रहे।

१९.
एक ठंडी-सी उम्र

अब न रंजिश का वो शोर है, न मनाने की उमंग,
बस एक ठंडी-सी उम्र है, जो कटे जाती है।

घर में सब कुछ है— रोशनी, बर्तन, रज़ाई, परदे…
बस जो होना था हमें, वो नहीं होता अब।

मैंने सीखा कि मुहब्बत भी कभी चुप हो जाती है,
और फिर चुप्पी ही बरसों तक उसे ढोती रहती।

तू अगर आज भी धीरे से मेरा नाम बुलाए,
मेरी वीरान रगों में कोई बहार उतर आए।

हम जो जीते हैं यहाँ, ये भी बड़ी बात है शायद,
वरना इस सर्द जगह में तो धड़कना मुश्किल था।

कुछ चुनिंदा शे'र

१.

घर में अब बातचीत नहीं, बस ज़रूरतें चलती हैं,
हम दोनों का रिश्ता जैसे सूची में बदला हुआ है।

२.

मैंने तेरे पास बैठने का वक़्त निकाला था,
तूने सामने रखी टोकरी में कपड़े तह करने शुरु कर दिए।

३.

तेरी ख़ामोशी अब ग़ुस्से से भी ज़्यादा डराती है,
आवाज़ें टूटती हैं, सन्नाटा आदमी तोड़ देता है।

४.

हम एक ही घर में रहकर भी ख़बरों से मिलते हैं,
किसने कब खाना खाया, ये भी बर्तनों से पता चलता है।

५.

मैंने कई बार तेरे कमरे के बाहर ठहर कर सोचा,
अंदर जाऊँ कि अपनी ही इज़्ज़त बचा लूँ।

६.

अब तेरे 'हूँ' में ही पूरा दिन निकल जाता है,
मेरे हिस्से की बातचीत बहुत छोटी हो गई।

७.

हमारे घर में कुर्सियाँ भी एक-दूसरे से दूर हैं,
शायद सामान ने भी हमारा ढंग सीख लिया है।

८.

मैंने ख़ामोशी से समझौता तो कर लिया है,
बस दिल अब भी हर शाम अपील लिखता है।

९.

तेरा पास से निकलना भी अब अजीब लगता है,
जैसे कोई अपना नहीं, कोई पुरानी आदत गुज़र रही हो।

१०.

तूने पूछा नहीं, मैंने बताया नहीं,
इसी शराफ़त में हमारा रिश्ता बीमार हो गया।

११.

मैं बालकनी में खड़ा था, तू रसोई में थी,
घर एक था, मगर शाम दो जगह उतर रही थी।

१२.

बड़े झगड़ों से ज़्यादा थका देती है ये हालत,
जहाँ कुछ कहना भी हो और कुछ कहा न जाए।

१३.

तेरे पास बैठकर भी मैं अपने भीतर बैठा रहता हूँ,
ये कैसी नज़दीकी है जिसमें सफ़र कम नहीं होता।

१४.

चाय की भाप उठती है, बात नहीं उठती,
घर में अब गरमी सिर्फ़ कपों तक रह गई है।

१५.

मैंने एक दिन हिम्मत कर के पूछा— “कुछ बदला है क्या?”
तूने परदा खींच दिया, शायद वही जवाब था।

१६.

तेरी पीठ ने मुझे तेरे चेहरे से ज़्यादा समझाया है,
रिश्ते जब ठंडे पड़ते हैं, तो करवटें बोलने लगती हैं।

१७.

हमारे घर में घड़ी बहुत ईमानदारी से चलती है,
बस दिल का वक़्त कई सालों से अटका हुआ है।

१८.

मैंने मेज़ पर दो कप रखे, तूने एक उठा लिया,
इसी तरह कई शामें आधी-आधी बँट गईं।

१९.

घर का दरवाज़ा अब भी ठीक से बंद होता है,
बस हमारे बीच की खिड़की हमेशा खुली रहकर भी बेकार है।

२०.

मैंने हँसने की कोशिश की, तूने सुना ही नहीं,
शायद इस घर में खुशियाँ भी धीरे चलती हैं।

२१.

तेरे कमरे की लाइट देर तक जलती रहती है,
मुझे लगता है शायद तू भी मुझ-सी जागती है।

२२.

हमने लड़ना कम किया, दूर होना ज़्यादा,
शादी ने हमें तहज़ीब सिखाई, नज़दीकी नहीं।

२३.

अब घर में कोई ऊँची आवाज़ नहीं उठती,
यक़ीन मानो, यही बात सबसे ज़्यादा डराती है।

२४.

तूने नमक पास किया, मैंने पानी बढ़ा दिया,
आजकल हमारा साथ बस इतनी-सी भाषा जानता है।

२५.

मैंने तेरे ‘रहने दो’ को कई अर्थ दिए हैं,
हर अर्थ में थोड़ा-थोड़ा मैं ही कम निकला।

२६.

तेरे चुप रहने से घर संभल तो जाता है,
मगर मेरी रूह में बहुत शोर रहने लगता है।

२७.

तस्वीरों में हम अब भी जोड़े की तरह लगते हैं,
ज़िंदगी में वही फ़्रेम खाली पड़ा रहता है।

२८.

कभी-कभी लगता है हम दोनों बहुत अच्छे लोग हैं,
बस एक-दूसरे के लिए नहीं बचे।

२९.

मैंने कितनी दफ़ा बात शुरु की मौसम से,
हर बार लौटकर सन्नाटे पर आ गया।

३०.

घर में तेरी आहट भी अब औपचारिक लगती है,
जैसे किसी फ़ाइल पर मुहर लगा के कोई चला गया हो।

३१.

मैं बीमार था, तूने दवा रखी और चली गई,
उसी दिन समझा कि फ़र्ज़ और प्यार में कितना फ़ासला है।

३२.

तेरे चेहरे पे जो थकावट है, उसे मैं पढ़ता हूँ,
काश तू मेरे सन्नाटे को भी कोई भाषा देती।

३३.

बच्चों के लिए हम दोनों ने घर की शक्ल बचा ली,
अपने लिए मगर एक कमरा भी गर्म न रख पाए।

३४.

मैंने कई बार दराज़ बंद की है बहुत धीरे,
यहाँ शोर से ज़्यादा ख़ामोशी टूटने का डर होता है।

३५.

तूने मुझसे नहीं, बस कमरे से परदा किया है,
फिर भी अँधेरा जाने क्यों मेरे हिस्से में आता है।

३६.

रात की आख़िरी जाग में मैं अक्सर यही सोचता हूँ,
कितना कम बोलकर भी इंसान कितना दूर हो सकता है।

३७.

हम दोनों शायद एक-दूसरे को दोष न भी दें,
फिर भी ये चुप्पी किसी से कम सज़ा नहीं।

३८.

मैंने तकिये पलटे, चादर सीधी, लाइट बुझाई,
रिश्ते की मरम्मत में हाथ कहीं काम न आए।

३९.

तेरे कमरे के बाहर से गुज़रते हुए अब भी ठहरता हूँ,
आदमी आदत से भी कितना वफ़ादार होता है।

४०.

हमारे बीच अब ग़लती से भी मोहब्बत नहीं होती,
सबकुछ बहुत सोच-समझ कर चुप रहता है।

४१.

मैंने एक दिन तेरे लिए पुराना गीत चला दिया,
तूने पंखा तेज़ कर दिया—शायद वही तेरा जवाब था।

४२.

घर के काम बाँटना आसान निकला,
दिल का बोझ बाँटना हमसे नहीं हुआ।

४३.

तू रसोई में थी, मैं बिलों में उलझा बैठा था,
एक ही शाम थी, बस उसके दुख अलग थे।

४४.

अब तेरे सामने रोना भी अजीब लगता है,
जैसे बंद कमरे में खिड़की ढूँढ़ना।

४५.

तेरी आवाज़ अब भी मेरे नाम को पहचानती है,
बस उसमें पहले वाली पिघलन नहीं बची।

४६.

मैंने बहुत दिनों बाद तुझे छूने की सोची थी,
फिर याद आया कि यहाँ इजाज़तें भी ख़ामोश मिलती हैं।

४७.

हम दोनों साथ बैठे थे, सामने टीवी चल रहा था,
कहानी वहाँ भी थी, और यहाँ भी, बस आवाज़ उधर थी।

४८.

तेरे पास मेरी कितनी याद बची है, नहीं जानता,
मेरे पास तो तेरा सन्नाटा भी रखा हुआ है।

४९.

घरेलू शिष्टता ने हमें बहुत सभ्य बना दिया,
अब हम टूटते भी हैं, तो किसी को पता नहीं चलता।

५०.

मैंने कई रातें तेरी तरफ़ पीठ करके नहीं,
बस अपनी तरफ़ मुड़कर काटी हैं।

५१.

कुछ घरों में दीवारें ईंट से बनती होंगी,
हमारे यहाँ ख़ामोशियाँ ही चुनी गई हैं।

५२.

मैंने तेरे सामने मुस्कुरा कर जो दिन काटे हैं,
उनकी रातें ही जानती हैं कि मैं कितना खाली था।

५३.

अब तेरे साथ बैठकर भी अकेलापन कम नहीं होता,
जैसे सर्दी में धूप दिखे, पर बदन तक न पहुँचे।

५४.

मैंने इस घर को छोड़ने का सोचा भी नहीं,
शायद आदमी दीवारों से नहीं, उम्मीदों से बँधा रहता है।

५५.

तेरा चुप रहना मुझे आज भी पूरी तरह बुरा नहीं लगता,
क्योंकि उसमें कहीं-न-कहीं मेरा नाम अब भी फँसा होगा।

५६.

हम दोनों ने मिलकर घर बहुत अच्छे से चलाया है,
बस उसमें लौटने की वजह खो दी।

५७.

अगर कभी ये दीवारें बोल पड़ीं,
तो सबसे पहले हमारी चुप्पी का पता देंगी।

2.
रात के बाद वाला कमरा

झगड़े के बाद का कमरा
कभी सिर्फ़ कमरा नहीं होता।
वो अदालत भी होता है,
मक़बरा भी,
और कभी-कभी
दो ज़िंदा लोगों के बीच
पड़ी हुई एक ठंडी लाश भी।

रात बीत जाती है,
घड़ी अपनी ड्यूटी निभा देती है,
पंखा घूमता रहता है...
जैसे उसे इस घर की कहानी से
कोई लेना-देना न हो।
बाहर कुत्ते भौंकते हैं,
दूर कहीं कोई गाड़ी गुज़रती है,
किसी पड़ोसी के घर की बत्ती बुझती है—
दुनिया को आदत है
आगे बढ़ जाने की...
बस हमारे कमरे को नहीं।

इस कमरे में

झगड़े के बाद
सबकुछ अपनी-अपनी जगह पर रहता है—
तकिये,
चादर,
अलमारी,
दीवार की घड़ी,
पानी का गिलास,
यहाँ तक कि भगवान की छोटी-सी फ़्रेम की हुई तस्वीर भी।
सिर्फ़ हम अपनी जगह पर नहीं रहते।

तुम बिस्तर के उस किनारे पर होती हो
जहाँ कभी मेरा हाथ
बिना सोचे चला जाता था;
मैं इस किनारे पर होता हूँ
जहाँ अब नींद भी इजाज़त लेकर आती है।

रात के बाद वाला कमरा
सुबह होते ही
हमारी शराफ़त पहन लेता है।
तुम चुपचाप उठती हो,
चादर सीधी करती हो,
तकिये झाड़ती हो,
जैसे कुछ हुआ ही न हो।
मैं भी ऐसे उठता हूँ
जैसे मेरी छाती में रखा हुआ मलबा
सिर्फ़ अस्थायी निर्माण-सामग्री हो।

तुम पानी का गिलास बदल देती हो;

मैं पर्दा थोड़ा सरका देता हूँ;
तुम बाथरूम चली जाती हो;
मैं खिड़की खोल देता हूँ…
हम दोनों मिलकर
कमरे की हवा बदल देते हैं…
बस बात नहीं बदलते।

सुबह का सूरज
इस कमरे में बहुत संकोच से आता है।
उसे भी शायद मालूम है
कि यहाँ रोशनी से ज़्यादा
सबूत पड़े हैं—
तकिये की सिलवटें,
रज़ाई का एक ओर खिसक जाना,
तुम्हारी पीठ की दिशा,
मेरी आँखों के नीचे की सूजन,
वो अधूरी बात
जो 'रहने दो' पर रुक गई थी।

रात के बाद वाला कमरा
बहुत ख़तरनाक होता है
क्योंकि वहाँ चीख़ नहीं बचती,
सिर्फ़ उसका अर्थ बचता है;
वहाँ ताना नहीं बचता,
सिर्फ़ उसकी चुभन बचती है;

वहाँ गुस्सा नहीं बचता,
सिर्फ़ उससे थका हुआ आदमी बचता है।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ…
अगर इस कमरे की दीवारें बोल पड़ें,
तो शायद वे झगड़े के शब्द नहीं दोहराएँगी।
वे बस इतना कहेंगी—
कि दो लोग
एक ही रात में
कितनी दूर जा सकते हैं,
बिना बिस्तर छोड़े?

और सुबह—
सुबह इस कमरे की सबसे बड़ी क्रूरता है…
क्योंकि वह हर टूटन को
दिनचर्या में बदल देती है।
तुम चाय बना देती हो,
मैं अख़बार खोल लेता हूँ,
बच्चे उठ जाते हैं,
दूध गरम होता है,
स्कूल बस का समय हो जाता है,
और रात की वह सारी आग
रसोई के धुएँ में समा जाती है।

मगर मुझे मालूम है,
तुम्हें भी होगा—
रात के बाद वाला कमरा
कभी पूरी तरह सुबह नहीं होता।
उसमें कुछ अँधेरा
दिनभर पड़ा रहता है—
बिस्तर के नीचे,
अलमारी की छाया में,
दीवार के कोने में,
और सबसे ज़्यादा
मेरे अंदर!

भाग-4

रसोई, किस्तें और कटाक्ष

१.

मुहब्बत से नहीं, चम्मचों से निभाना है

सुबह की चाय में अब स्वाद से ज़्यादा ताना है,
तेरे लहजे ने ही रसोई को बहुत पुराना-सा जाना है।

मैंने बस इतना कहा— "चीनी थोड़ी कम कर दो..."
तूने समझा कि मुझे हर चीज़ पे अफ़साना है।

गैस जलती है, तवा गरम है, आटा भी तैयार,
बस हमारे बीच का रिश्ता ही कच्चा दाना है।

तेरी भौंहों में सुबह-सुबह जो शिकन रहती है,
मुझको लगता है कि घर ने ही तुझे भरमाना है।

मैं जो कप लेकर खड़ा हूँ, तो कटाक्ष मिलता है,
अब मुहब्बत से नहीं, चम्मचों से निभाना है।

२.
क़िस्तों की गिनती

माह की पहली तारीख़ को तनख़्वाह भी काँपती है,
तेरी आँखों में क़िस्तों की गिनती चमकती है।

मैंने लिफ़ाफ़ा तेरे आगे बहुत चुपके से रखा,
तूने पूछा कि 'बस इतना?' तो रूह सिमटती है।

घर का बजट भी अजब चीज़ है, दिल से शुरु हो,
और आख़िर में वही जेब की सिलवट बनती है।

मैंने सपनों की जगह राशन को तरजीह दी थी,
फिर भी रोटी पे तेरा शक मुझे ही चुभता है।

क़िस्तें भरते-भरते मैं उम्र का हिसाब भूलूँ,
तू कटाक्षों से मुझे रोज़ नया कर्ज़ देती है।

३.
मेरी ख़ामोश थकन

दाल में नमक ज़रा कम हो, तो ऐलान होता है,
मेरी ख़ामोश थकन पर कब बयान होता है।

मैंने रोटी की तरफ़ हाथ बढ़ाया ही था बस,
तूने पूछा कि 'कमाई से ये सब चलता है?'

तेरे ताने भी अजब ढंग से भूखे रखते हैं,
कौर मुँह तक तो पहुँचे, दिल बहुत खाली रहता है।

रसोईघर में धुआँ सिर्फ़ मसालों से नहीं है,
कुछ पुरानी-सी शिकायत भी भुनाई जाती है।

मैं जो हँस दूँ, तो कहे— "तुमको कोई फ़र्क़ नहीं!"
मैं जो चुप रहूँ, तो लगे दोष छुपाया जाता।

४.
भाव से रिश्ते तय हैं

सब्ज़ियों के भी यहाँ भाव से रिश्ते तय हैं,
आलू सस्ते हैं, तो चेहरे पे सवाल आते हैं।

मैं बाज़ारों में महँगाई से जूझता वापस आऊँ,
तू कहे 'देख के लाते', तो बुरे हाल आते हैं।

थैले भर लाया था मैं घर की ज़रूरत समझकर,
तूने देखा तो कहा— "बस यही ख़याल आते हैं?"

तेरे लहजे में टमाटर भी बहुत लाल लगे हैं,
अब तो प्याज़ों से भी ज़्यादा ये कटाक्ष चुभे हैं।

घर चलाना है, मुहब्बत का इम्तिहान नहीं है,
कि यहाँ हर खरीदारी पे हिसाब माँगा जाए।

५.
शादी कोई नौकरी है

मैं जो दफ़्तर से ज़रा देर से आता हूँ कभी,
तेरी रसोई में ग़ुस्से का तड़का बढ़ जाता है।

दाल पकती भी रहे, फ़ोन पे शिकवा भी रहे,
मेरे आने से पहले फ़ैसला हो जाता है।

मैंने ट्रैफ़िक की कसम खाकर सफ़ाई दी, तो
तूने हँसकर कहा— "तुम्हें बहाना आता है"।

रात ठंडी हो, रोटी भी ठंडी, दिल भी ठंडा,
देर से घर में जो आओ, तो यही मिलता है।

मैं कमाऊँ भी, मनाऊँ भी, सफ़ाई भी दूँ रोज़,
मुझको लगता है कि शादी कोई नौकरी है।

६.
मेरी नीयत में कमी

मैंने पूछा— "कुछ काम हो तो हाथ बँटा दूँ?"
तूने हँसकर कहा— "मत कर, और बिगाड़ेगा!"

मैंने प्याज़ों को भी तेरे लिए आँखों से काटा,
फिर भी तेरा यही कहना था— "किसे सुधारेगा?"

रसोईघर में मेरी कोशिश भी गुनाहों जैसी,
मैं अगर पास रहूँ, दोष नया जन्मेगा।

मैं अगर दूर रहूँ, फिर यही इल्ज़ाम लगे,
"घर की चिन्ता ही नहीं" — ये भी सुना जाएगा।

तेरी रोटी में हुनर है, मेरी नीयत में कमी,
घर यही फ़ैसला हर शाम सुनाया करता।

७.

मुझे टुकड़ों में बाँट रखा है

गैस, सिलिंडर, दूध, बिजली, पानी, बच्चों की फ़ीस,
इक गृहस्थी ने मुझे टुकड़ों में बाँट रखा है।

मैंने जेबों में उधारों की हवाएँ भर लीं,
तूने लहजे में कटाक्षों का मकान रख छोड़ा।

माह के बीचोबीच ही दम निकलने लगता है,
और अंत आते-आते मैं कैलेंडर-सा लगता हूँ।

मैंने सोचा था कि साथी से सुकूं भी मिलेगा,
यहाँ तो साथ में हर बोझ दोगुना निकला।

रोटियाँ गोल थीं, हालत मगर टेढ़ी होती,
इस रसोई में बहुत कुछ तो सही है, हम नहीं।

८.
मोहब्बत भी कई बार ग़रीब होती है

तेरे तानों में पड़ोसी के घरों का ज़िक्र भी है,
‘देखो उनको’ से ही मेरा मन छोटा होता।

फलां के शौहर ने गाड़ी ली, नया फ्रिज़ भी लाया,
मैंने चुपचाप अपना बटुआ और कसकर पकड़ा।

मुझसे तुलना न कर, मैं भी कोई इंसां हूँ बस,
कोई ऑफ़र नहीं, जिसको बढ़ाया जाए।

तेरी बातें मुझे कम, मेरी हैसियत को काटें,
अब तो अपने ही घर में मैं दरों पर तौला जाऊँ।

फिर भी तेरे लिए लाता हूँ, जो लाना बन पड़ता
क्योंकि मोहब्बत भी कई बार गरीब होती है।

९.
फ्रेम के पीछे कर्ज़ की तारीख़

त्यौहार आया, तो हमने भी सजावट की बहुत,
पर मिठाई से ज़्यादा बजट की बात हुई।

मैंने दीये भी जलाए, तूने लिस्ट भी बनाई,
घर में पूजा से पहले किश्तों की गिनती हुई।

कपड़े, तोहफ़े, मिठाई, रंगों का जोड़ा रखा,
एक कोने में मगर मेरी हैसियत भी रखी थी।

तेरे माथे पे उजाला था, मेरे माथे पे हिसाब,
कैसे त्यौहार में भी आदमी दफ़्तर लग जाए।

हमने तस्वीर तो खिंचवाई हँसकर दुनिया भर की,
फ्रेम के पीछे मगर कर्ज़ की तारीख़ लगी थी।

१०.
तेरे लहजे से डरता हूँ

रात के खाने पे रंजिश का तवा गरम निकला,
दाल से कम तेरी आवाज़ से धुआँ उठता था।

मैंने थाली में जो चुपचाप निवाले रखे थे,
हर कौर पे कोई पुरानी शिकायत बैठी थी।

तूने रोटी के बहाने मेरी औक़ात पढ़ी,
मैंने पानी के सहारे कई जज़्बात निगले।

घर का खाना भी अजब चीज़ है, पेट भर देता है...
और वही खाना कई बार आदमी तोड़ देता है।

शाम की भूख तो कम हो गई, दिल और बढ़ा...
अब मैं मेज़ों से नहीं, तेरे लहजे से डरता हूँ।

११.
चैन का कमरा न मिला

ईएमआई ने ही मोहब्बत को किश्तों में बाँटा,
हमने हर माह उसे थोड़ा-थोड़ा चुका डाला।

फ्रिज़, अलमारी, मकां, किस्त पे सबकुछ आया,
बस जो दिल था, वो किसी कर्ज़ में शामिल न हुआ।

मैंने बैंक को समय पर बड़े आदर से चुकाया,
तूने मुझको ही हमेशा उधार समझा मगर।

क़िस्त देते हुए लगता है कि कुछ कम हो रहा हूँ,
तेरे तानों से यक़ीं होता है, मैं कम ही हूँ।

घर ख़रीदा था कि इसमें कोई ठिकाना होगा,
घर तो मिल गया, मगर चैन का कमरा न मिला।

१२.
उधड़ी हुई धड़कन

तेरी सूचियों में राशन, मिर्च, हल्दी, तेल... सब हैं...
मेरे हिस्से में सफ़र, जोड़-घटा, चुप्पियाँ आईं।

मैंने महीने की शुरुआत में इरादे बाँधे थे,
बीच महीने में वही इरादे सिकुड़कर रह गए।

तेरे रजिस्टर में खर्चे भी बहुत सलीके से हैं,
मेरे सीने में मगर उधड़ी हुई धड़कन रहती।

घर चलाना भी अजब फ़न है, कि दोनों लगे हों,
फिर भी दोनों को लगे, बोझ अकेला ही उठाया।

मैंने बजट में कई बार अपनी ख़्वाहिश काटी,
तूने फिर भी कहा— "तुममें समझदारी कहाँ है"।

१३.
यही चीज़ आदमी खा जाती

महँगाई का भी तेवर कुछ तेरे जैसा निकला,
हर हफ़्ते नई कीमत से मुझे छोटा करता।

मैं जो सब्ज़ी का थैला लिए दरवाज़े पे पहुँचा,
तूने पूछा— "इतने में बस इतना ही आया?"

मैंने बाज़ार में सौदा नहीं, साँसें तोलीं थीं,
हर दुकानदार की आँख में जमाना बैठा था।

घर में टमाटर से ज़्यादा लाल मेरा चेहरा था,
तेरे एक जुमले ने महँगाई का निचोड़ कहा।

रोज़मर्रा की ये लड़ाइयाँ बड़ी लगती नहीं हैं,
पर यही चीज़ तो आख़िर में आदमी खा जाती।

१४.
दिल की गिनती किसी खाते में नहीं चढ़ती

कार्ड स्वाइपों में कई उम्रें निकल जाती हैं,
और बिल आते ही आँखों में धुँध छा जाती है।

मैंने सोचा था कि आसान करूँगा ये सफ़र,
कर्ज़ ने राह को और भी मुश्किल लिख डाला।

तूने पूछा— "क्यों लेते हो इतना उधार?"
मैंने सोचा— "कि कभी घर को भी आसान करूँ"।

तेरे तानों की भी एक ईएमआई चलती रही,
हर महीने कोई पुरानी पर्ची निकल आती है।

मैं जो हिसाबों में फँसा हूँ, तो यही सच निकला,
दिल की गिनती किसी खाते में नहीं चढ़ती है।

१५.
कटु वाक्यों का डिब्बा

रसोईघर की दीवारों पे धुआँ ठहरा हुआ है,
जैसे हर बात का अंजाम यहीं लिखना हो।

तेरी कलछी भी अजब लहजे में चलती है मुझपर,
जैसे खाने नहीं, किस्मत को पलटना हो।

मैंने पूछा 'आज थक गई होगी', तो बोली—
"हाँ, मगर तुमको तो बस खाना ही चाहिए!"

कितनी नाज़ुक थी कभी रोटी पे लगती वो घी,
अब उसी घी में तंज़ों का करारापन घुला है।

मैंने देखा है कि इस घर में मसाले कम हैं,
कटु वाक्यों का मगर डिब्बा हमेशा भरा रहता।

१६.
हर बची चीज़ बचती नहीं

बची हुई सब्ज़ियाँ भी फ्रिज़ में सलीके से हैं,
बस बची हुई मोहब्बत का ठिकाना न मिला।

मैंने कल की बची रोटी को गरम करके खाया,
जैसे रिश्ते की भी ठंडी कोई याद खा ली।

तूने कहा— "फेंक न देना, काम में आ जाएगी..."
काश! ये जुम्ला कभी हम पे भी लागू होता।

घर में बचत का बड़ा सख़्त क़ायदा चलता है,
बस जज़्बात ही हैं, जो बर्बादी में डाले गए।

मैंने सोचा कि बची चीज़ में भी स्वाद रह सकता,
फिर समझ आया, हर बची चीज़ बचती नहीं।

१७.
मेरी नींदों की रसीद

बिजली का बिल, पानी का हिसाब, सिलिंडर की बुकिंग,
घर ने प्रेम नहीं, प्रशासन बहुत सिखा दिया।

मैंने मीटर की तरफ़ देखा, तो ख़ुद पर हँसी आई,
दिल जला कम, यूनिटों का डर ज़्यादा निकला।

तूने पंखा भी चलाया, तो कटाक्ष साथ आया,
"बिल तो फिर तुम ही भरोगे" — यही सुनना था।

घर की हर चीज़ का खर्चा मुझे याद कराया गया,
मेरी नींदों का मगर किसे रसीद दिखती है!

कितना मुश्किल है कि रोशनी भी संभालो, घर भी…
और उसी वक़्त कोई तेरी औक़ात भी नापे।

१८.
घर से लाया था खाना

मैंने टिफ़िन को सुबह चुपचाप उठा तो लिया था,
तेरे हाथों की जगह बस तरतीब मिली उसमें।

रोटी, सब्ज़ी, सलाद सब थे गिने-तुले ढंग से,
जैसे फ़र्ज़ निभाया गया, प्यार रखा न गया।

दफ़्तर में खोल के देखा, तो बड़ा दर्द हुआ,
घर से लाया था खाना, घर का एहसास नहीं।

मैंने आधा ही खाया, बाक़ी यूँ ही छोड़ दिया,
कुछ निवाले गले से यूँ ही उतरते कब हैं!

शाम को डिब्बा जो वापस रखा मेज़ पे चुपचाप,
तूने पूछा भी नहीं, स्वाद कैसा था उसमें।

१९.
अधूरा निकला

मंडी में भाव सुनकर जो घर लौटता हूँ मैं,
घर में मुझको ही महँगाई का पता समझा जाए।

मैंने पूछा था— "आज क्या पकाना आसान रहेगा?"
तूने बोला— "तुम्हें बस खाना ही आसान लगे"।

राशन की थैली में मैंने बड़े अरमान रखे थे,
तूने उनमें से भी कमी का धागा ढूँढ़ लिया।

मैंने अपने ही लिए कुछ न खरीदा, फिर भी
तेरी नज़र में मैं फ़िज़ूलख़र्च ही ठहरा आखिर।

घर की ख़ातिर जो बाज़ारों में झुलसता रहता,
वो ही आकर तेरे सामने अधूरा निकला।

२०.
कटाक्षों की आँच

तेरे लहजे में कई बार मेरे घर वाले घुलते,
जैसे मसाले में पुरानी कोई कसक पीसी हो।

मैंने माँ का जो ज़रा हाल भी पूछ लिया, तो
तेरे चेहरे पे रसोई से बड़ा धुआँ उठता है।

तेरे तानों में ससुराल का अदब कम होता,
और मैं बीच का आदमी बहुत छोटा होता।

घर के खाने में नमक कम हो, तो बतलाया जाए,
रिश्तों में जो कड़वाहट है, कहाँ तौली जाए!

मैंने दोनों तरफ़ रिश्ते संभाले भी बहुत हैं,
पर कटाक्षों की आँच में ही मैं सिंकता जाता।

२१.
पनाह न मिले

बरसात आई तो छत टपकी, मन पहले से भीगा,
ईएमआई वाले मकां ने भी करिश्मा कम न किया।

मैंने बाल्टी रखी, कपड़े बचाए, तार खींचे,
तूने बोला— “देखो... लेना ही था, तो अच्छा लेते!”

घर की किश्तें भी भरीं, मरम्मतें भी मैंने कीं,
फिर भी इस छत तले चैन का मौसम न मिला।

तेरी आवाज़ में बारिश से ज़्यादा ठंडक थी,
मेरे कपड़ों से ज़्यादा मन भिगोती गई।

कितना अजीब है कि अपना ही मकां सिर पे हो,
और आदमी को ही उसमें पनाह न मिले।

२२.
बहुउद्देशी सामान

मैंने खुद पर भी कभी-कभी बड़ा हँसना सीखा,
शौहर कम, घर का बहुउद्देशी सामान लगा।

कभी ड्राइवर, कभी कैशियर, कभी थैला ढोने वाला,
कभी रसोई का ग़लत सलाहकार बना फिरता हूँ।

मैंने शादी को समझा था कि रिश्ता होगा,
ये तो जिम्मों का बड़ा कॉम्बो-पैक निकला भाई।

तेरी हँसी भी कभी-कभी मुझे बचा लेती है,
वरना कटाक्षों में मैं रोज़ गिरा करता हूँ।

अपनी हालत पे जो हँसूँ भी, तो क्या ग़लत होगा?
आदमी रोए, तो घर पूछता है— "किसके लिए?"

२३.
प्यार रसोई में गुम हुआ है

रसोई, किस्तें, कटाक्ष— इन्हीं तीनों में दबा हूँ मैं;
इन्हीं तहों में कहीं अपना पुराना रूप रखा है।

तू भी थकती है, मैं भी रोज़ ही कम पड़ता हूँ;
घर का सच ये है कि दोनों ने बहुत झेला है।

मैंने चाहा कि कभी बैठ के दिल खोलेंगे,
पर यहाँ पहले गैस, फिर फ़ीस, फिर हिसाब आता।

तेरे तानों में भी शायद कोई टूटा दुख होगा,
मेरी चुप्पी में भी तेरी ही जगह बाकी है।

प्यार मरा तो नहीं, बस रसोई में गुम हुआ है,
क़िस्तों के नीचे दबा, तंज़ में धीमा हुआ है।

अगर एक दिन तू बिना कटाक्ष के 'चाय' कह दे,
मैं अभी भी उसी लफ़्ज़ पे घर लौट आऊँगा।

कुछ चुनिंदा शे'र

१.

रसोई में अब सिर्फ़ खाना नहीं पकता,
कई पुराने गिले भी रोज़ दोबारा गरम होते हैं।

२.

मैंने चीनी कम माँगी थी, मुक़दमा नहीं,
पर हमारे घर में स्वाद भी चरित्र से जुड़ जाता है।

३.

तेरे 'बस इतना ही लाए?' ने इतना तो सिखाया…
महँगाई बाज़ार में कम, घर लौटकर ज़्यादा लगती है।

४.

ईएमआई भरते-भरते मैं उम्र का हिसाब भूल गया,
तूने फिर भी मुझसे हर महीने नया सबूत माँगा।

५.

घर चलाने के लिए मैंने सपने काटे थे,
तूने उन्हीं कटे हिस्सों से मेरे ख़िलाफ़ तीर बना लिए।

६.

तेरे तानों का नमक दाल से ज़्यादा तेज़ है,
इसीलिए खाना खाकर भी मन बेस्वाद रहता है।

७.

मैं बाज़ार से सब्ज़ी नहीं, अपनी हैसियत उठा लाता हूँ,
और तू थैले देखकर उसका वज़न बताती है।

८.

तेरी रसोई बहुत सलीके से चलती है,
बस उसमें मेरे लिए नरमी की जगह कम है।

९.

मैंने घर के लिए उधार लिया था, शौक़ के लिए नहीं,
कर्ज़ की रसीद में भी तेरी नाराज़गी मुफ्त मिली।

१०.

रात की रोटी ठंडी हो जाए, तो गरम की जा सकती है,
लहजे की ठंडक का अब तक कोई तवा नहीं मिला।

११.

तेरी सूची में राशन, गैस, तेल, साबुन सब है,
मेरे हिस्से में बस ‘कैसे होगा’ लिखा रहता है।

१२.

मैं जो दफ़्तर से थककर घर लौटता हूँ,
रसोई से पहले तेरा हिसाब सामने आ जाता है।

१३.

तेरे कटाक्षों की आँच पर मैं धीरे-धीरे पका हूँ,
इसीलिए बाहर से सामान्य हूँ, भीतर से जला हुआ।

१४.

मैंने पूछा— "मदद कर दूँ?" और तूने कहा— "रहने दो!"
घर में मेरे हाथ से ज़्यादा मेरी नीयत जज होती है।

१५.

सब्ज़ी में मसाला कम हो, तो शाम बिगड़ जाती है,
रिश्ते में ममता कम हो, तो साल निकल जाते हैं।

१६.

ईएमआई ने हमसे किश्तों में सिर्फ़ पैसा नहीं लिया,
उसने शाम की हँसी भी थोड़ी-थोड़ी काटी है।

१७.

तेरे 'फलां के शौहर' से मेरा कोई झगड़ा नहीं,
मुझे बस अपने ही घर में कम न आँका कर।

१८.

रसोई के बर्तन तुझसे ज़्यादा मुझे पहचानते हैं,
क्योंकि मैं हर रात उनकी आवाज़ में अपना नाम सुनता हूँ।

१९.

मैंने बहुत बार हँस कर बात मोड़ दी है,
शादी में हास्य भी कई बार मरम्मत का औज़ार होता है।

२०.

तेरे तंज़ और बैंक की तारीख़, दोनों तय आते हैं,
फ़र्क़ बस इतना है कि बैंक रसीद दे देता है।

२१.

घर की महँगाई ने मुझे कम परेशान किया,
तुझसे सस्ता साबित होने का डर ज़्यादा लगा।

२२.

तेरी रोटी गोल है, मेरी दलील टेढ़ी,
यही कहकर इस घर ने कई शामें काट लीं।

२३.

मैंने फ्रिज़ की किस्त भरी, तूने उसमें बची सब्ज़ी रखी,
हम दोनों ही किसी-न-किसी तरह बचत कर रहे थे।

२४.

तेरे हाथ की रोटी में अब भी घर बसता है,
बस तेरे लहजे में कभी-कभी घर छूट जाता है।

२५.

मैंने अपने लिए कुछ न लिया बाज़ार से,
फिर भी तेरी नज़र में फ़िज़ूलख़र्च ही रहा।

२६.

घर की हर चीज़ का खर्चा मुझे याद दिलाया जाता है,
मेरी टूटती हिम्मत का हिसाब कौन रखेगा?

२७.

तेरे 'तुमसे नहीं होता' में जो ठंडक होती है,
उतनी तो फ्रिज़ की ट्रे में भी नहीं मिलती।

२८.

महँगाई ने कम, तुलना ने ज़्यादा तोड़ा मुझे,
दामों से पहले आदमी कीमत बन जाता है।

२९.

मैं जो दफ़्तर में देर तक रुका रहता हूँ,
घर लौटकर भी अक्सर सफ़ाई की ड्यूटी लगती है।

३०.

कभी तेरे लिए फूल लाता था, अब धनिया देखता हूँ,
मोहब्बत का भी मध्यमवर्गीय संस्करण होता है।

३१.

घर में आजकल 'क्या बनाऊँ' सबसे भारी सवाल है,
जैसे भोजन नहीं, दिन का मूड तय होना हो।

३२.

तूने कहा— "किस्तें भरते-भरते क्या रखा?"
मैंने सोचा— "शायद यही कि घर अभी टूटा नहीं"।

३३.

मैंने टिफ़िन खोला, तो खाना ठीक था,
बस उसमें वो छोटी-सी परवाह नहीं थी, जो पहले होती थी।

३४.

रसोई में धुआँ कम हो जाए, तो खिड़की खोल लेते हैं,
रिश्ते में धुआँ भर जाए, तो लोग चुप हो जाते हैं।

३५.

तेरे कटाक्षों की भी एक रेसिपी होगी शायद,
हर बार नया स्वाद, पर असर वही कड़वा।

३६.

मैं घर का कैशियर भी हूँ, कुली भी, और आरोपी भी,
शादी ने एक ही आदमी में कई पद भर दिए।

३७.

गैस खत्म हो जाए, तो तुरंत खबर हो जाती है,
मेरे सब्र का ख़त्म होना किसी नोटिस में नहीं आता।

३८.

तेरी रसोई से खुशबू अब भी आती है,
बस उसी दरवाज़े से अब अपनापन कम निकलता है।

३९.

मैंने कई किस्तें सिर्फ़ चीज़ों की नहीं भरीं,
कई बार अपनी नींद और सुकून भी जमा किया है।

४०.

तेरा 'रहने दो' और बैंक का 'ओवरड्यू'—
दोनों ही आदमी की साँस छोटी कर देते हैं।

४१.

आटा गूँधते-गूँधते तूने मुझपर ताना कसा,
घर में प्रेम भी शायद बेलन से गोल नहीं होता।

४२.

मैंने सोचा था मकान खरीदकर सुकून आएगा,
मकान आ गया, सुकून बैंक की शर्तों में न था।

४३.

तेरे हिसाब से मैं कभी पूरा नहीं पड़ता,
मेरे हिसाब से मैं कोशिश में पूरा घिस गया हूँ।

४४.

रसोई, किस्त और कटाक्ष— ये तीन शब्द काफी हैं
एक मिडिल-क्लास शादी का मौसम समझने को।

४५.

मैंने कर्ज़ लेकर आराम ख़रीदना चाहा था,
आराम नहीं आया, बस महीने छोटे हो गए।

४६.

तूने पूछा— “दाल इतनी कम क्यों लाए?”
मैंने सोचा— “शायद इसलिए कि जेब भी इंसान है”।

४७.

घर में छोटी-छोटी बातें बहुत लंबी चलती हैं,
बड़े मसले अक्सर रोटी सेंकते-सेंकते दब जाते हैं।

४८.

तेरे हाथ की चाय अब भी मुझे रोक लेती है,
चाहे उसके साथ दो कटाक्ष मुफ्त ही क्यों न हों।

४९.

मैंने बाज़ार में 'सस्ता' ढूँढ़ा, घर में 'सुकून'...
दोनों ही चीज़ें आजकल जल्दी नहीं मिलतीं।

५०.

तेरी आवाज़ में जब रसोई का धुआँ घुल जाता है,
मुझे अपना ही नाम जला हुआ-सा सुनाई देता है।

५१.

मैंने कई शामें पानी से पेट नहीं, दिल शांत किया है...
खाने से ज़्यादा बात का स्वाद कड़वा था।

५२.

ईएमआई भरने वाला आदमी रोता कम है,
उसे अगले महीने की तारीख़ याद रखनी होती है।

५३.

तेरे सामने अपनी कमाई रखना आसान है,
अपनी टूटी हिम्मत रखना अभी तक नहीं आया।

५४.

घर की बचत में हमने बहुत कुछ बचा लिया,
बस रिश्ते की गरमी रोज़ थोड़ा-थोड़ा खर्च हुई।

५५.

रसोई में तेरे हाथ तेज़ हैं, मेरी जेब कमज़ोर,
हम दोनों की यही जोड़ी आजकल घर चला रही है।

५६.

मैंने हँसकर कहा— "आज नमक थोड़ा तेज़ है…"
तूने साबित कर दिया कि तेज़ हो सकती है बात उससे भी।

५७.

तेरी रोटी ने मुझे कई बार घर में रोके रखा,
वरना कटाक्षों ने बहुत पहले बाहर कर देना था।

५८.

मैंने घर में खर्चा कम करने की बातें की थीं,
पता नहीं कैसे उससे भी मेरा दिल महँगा पड़ गया।

५९.

प्रेम अगर सचमुच बचा है, तो किसी कोने में होगा,
जहाँ राशन की सूची और बैंक संदेश न पहुँचते हों।

६०.

तू अगर एक दिन बिना हिसाब के मुस्कुरा दे,
मैं शायद फिर से खर्चों से नहीं, तुझसे डरूँगा।

६१.

रसोई, किस्तें और कटाक्ष ने इतना तो किया…
हम अजनबी बने रहे, पर घर छोड़कर न गए।

भाग-5

जो बचा है, वही दर्द है

१.
भीतर से खंडहर

जो बचा है, वही दर्द है इस घर की तरह,
मैं भी आबाद हूँ बाहर से, खंडहर की तरह।

तेरी आवाज़ तो आती है, मगर दिल तक नहीं,
जैसे अनज़ाने भी कभी रुक जाएँ शहर की तरह।

मैंने तकिये पे जो कुछ रातें संभाल कर रखीं,
सुबह बिखरी हुई निकलीं वो बिस्तर की तरह।

तू भी यहीं है, मैं भी यहीं, घर भी यहीं है अब,
बस हम रहते नहीं इसमें मुक़र्रर की तरह।

कितना अजीब है कि सबकुछ तो बचा रह गया,
सिर्फ़ अहसास ही खोया है, समंदर की तरह।

२.
बहुत देर से बैठी है यहाँ शाम

अब न झगड़ा है, न शिकवा है, न इलज़ाम कोई,
बस बहुत देर से बैठी है यहाँ शाम कोई।

मैंने दरवाज़ा भी खोला, तो हवा चुप निकली;
घर में रहता है, मगर घर का नहीं नाम कोई।

तूने पूछा भी नहीं, मैं कहाँ खोया रहता हूँ,
मैंने सोचा भी नहीं, अब दूँ जवाब कोई।

हमने रिश्ते को बहुत सभ्य तरीक़े से जिया,
दिल के हिस्से में मगर दर्ज न हुआ काम कोई।

अब जो बचा है, तो बस आदतें हैं और थोड़ा दर्द...
और कुछ सूखी हुई यादों का सामान कोई।

३.
साथ रहना भी जुदाई

तेरे चेहरे पे थकन है, मेरे सीने में कसक,
हमने बस इतना ही पाया है बरसों के बाद।

मैंने चाहा था कि अब कुछ तो सहज हो जाए,
दर्द ने फिर मुझे समझाया— "अभी थोड़ा और!"

घर में चलता रहा— सामान, समय, फ़र्ज़, रिवाज़!
बस मोहब्बत ही ठिठकती रही दहलीज़ के पास।

तूने देखा तो बहुत, पर कभी समझा न मुझे,
मैंने समझा भी तुझे, पर कभी कहा ही नहीं।

अब जो समझा हूँ, तो इतना... कि यही हक़ीक़त है...
कभी-कभी साथ रहना भी जुदाई होता है।

४.
दर्द वहीं जाग रहा था

घर के हर कमरे में आवाज़ बची है थोड़ी,
बस हमारे ही लहजों में कमी पड़ गई है।

डाइनिंग टेबल पे हम आज भी आमने-सामने,
पर नज़र मिलती नहीं, थाली बदलती रहती है।

मैंने पानी के गिलासों में बहुत कुछ देखा है,
तू जो कुछ कह न सकी, उसकी नमी रहती है।

रात को लाइट बुझी, तो लगा कि दिन ख़त्म हुआ,
सुबह मालूम हुआ, कि दर्द वहीं जाग रहा था।

हमने रोना भी शराफ़त से टाल रखा था,
अब वही शराफ़त भीतर से चुभन देती है।

५.
क्या यही लोग हैं?

मैंने अलमारी से निकाली थी पुरानी तस्वीर,
उसमें हँसते हुए दो लोग मुझे देख रहे थे।

मैंने सोचा कि ये हम हैं, मगर यक़ीं न हुआ,
इतने हल्के तो कभी कंधे नहीं अपने लगे।

तूने बस धूल झटकी और उसे रख भी दिया,
जैसे यादों का भी घर में कोई हिस्सा कम हो।

मुझको तस्वीर ने आजिज़-सा बनाकर पूछा
"क्या यही लोग हैं, जो एक-दूसरे से चुप हैं?"

मैंने मुस्कान से उत्तर तो दिया, पर दिल फिर
उस पुराने-से काग़ज़ को गले लगा कर रोया।

६.
तेरी करवट पूरे मकां जितनी

अब तेरे पास भी बैठूँ तो सुकूं मिलता नहीं,
जैसे धूप आ तो जाए, पर बदन तक न पहुँचे।

मैंने कितनी ही दफ़ा हाथ बढ़ाया चुपके से,
तेरे अंदाज़ ने हर बार इजाज़त लौटा दी।

एक ही बिस्तर है लेकिन ये अजब हालत है,
तेरी करवट भी मुझे पूरे मकां जितनी लगे।

अब न छूना है, न कहना है, न समझाना मुझे,
मैंने दिल को भी बहुत तहज़ीब सिखा डाली है।

जो बचा है, वहीं दर्द की तह में बचा है,
वरना चाहत तो बहुत पहले ही थक कर सोई है।

७.

तेरे रहते हुए भी इंतज़ार

तेरे रहते हुए भी मुझको तेरा इंतज़ार रहा,
ये भी शादी का कोई अजीब इम्तिहान रहा।

तूने मुझसे जो न बोला, वही सबसे ज़्यादा था,
तेरे अनकहे का ही सीने पे अधिकार रहा।

मैंने मज़ाक में कई बार ये हालत टाली है,
वरना हर रोज़ मुझे रोना भी आसान रहा।

घर की दीवार पे कैलेंडर तो बदलते देखा,
मन के मौसम में मगर एक ही अवसाद रहा।

अब जो बचा है, वो आदत नहीं, बस टीस है कुछ,
जैसे टूटा हुआ दाँतों में अटका दाना हो।

८.

हम बहुत पहले गिरते

मैंने बच्चों की हँसी में कई रातें काटीं,
वरना इस घर में तो जीना बड़ा मुश्किल था।

तूने उनके लिए मुझसे बड़े समझौते किए,
मैंने उनके लिए खुद से बड़े समझौते किए।

हमने माँ-बाप की शक्लों में बहुत कुछ बचाया,
अपने हिस्से का मगर कुछ न बचा पाए हम।

उनके सोते ही मकां फिर वही वीरान हुआ,
जैसे मेले के बाद चौक अचानक सूना हो।

मैंने सीखा कि कई रिश्ते बच्चों से टिकते हैं,
दिल से टिकते, तो शायद हम बहुत पहले गिरते।

९.
घर में ज़्यादा तन्हा

अब मेरी शाम का मतलब है थोड़ा-सा सन्नाटा,
थोड़ा पानी, कोई कुर्सी, कोई पुराना गीत।

तेरा चेहरा भी उसी घर में कहीं चलता-फिरता,
जैसे तस्वीर से बाहर कोई मुरझाई रीत।

मैंने बालकनी में खड़े-खड़े ये जाना है,
आदमी भीड़ में कम, घर में ज़्यादा तन्हा है।

मेरे अंदर अभी थोड़ा-सा भरोसा बाकी है,
शायद इसीलिए अभी दर्द भी ताज़ा लगता...

वरना कब का मैं भी इन चीज़ों-सा जम जाता,
जो रखी रहती हैं घर में, मगर जीती नहीं।

१०.
माथे पे हथेली न आई

मेरी बीमारी भी इस घर में बड़ी शालीन रही,
दवा आई, मगर माथे पे हथेली न आई।

तूने पूछा भी, तो ये, कि 'दफ़्तर कैसे कर लोगे?'
दर्द कितना है, ये बात तेरी सूची में न थी।

मैंने बुख़ार में भी चाहा कि तेरा नाम लूँ मैं,
पर जो रिश्ता ही ठंडा हो, वो आवाज़ कहाँ दे।

घर में फ़र्ज़ों की दवा खूब समय पर मिलती,
बस मुहब्बत की कोई गोली बनी ही नहीं थी।

मुझको तब समझ में आया कि बचा क्या है यहाँ,
जिस्म संभलता है, मगर मन नहीं भरता कभी।

११.

जो बचाना था, वही बोझ हुआ

तेरी आँखों में कभी जो मेरा घर बसता था,
अब वहीं थकन है, कुछ सूखे हुए प्रश्न भी हैं।

मैंने भी आईने में खुद को कमतर पाया है,
जैसे वक़्त ने मुझे मुझसे ही कम कर डाला।

हमने दोनों ने बहुत कुछ न कहा इस डर से,
कहीं जो बचा है, वही न दरक जाए।

पर ये क्या,! जो बचाना था वही बोझ हुआ,
हम संभालते रहे, और वही हाथ काट गया।

अब तुझे दोष भी दूँ, तो बड़ा मुश्किल लगता,
मैं भी इस टूटन में कम शामिल नहीं निकला।

१२.
मेरे दर्द का कमरा

मैंने तेरे लिए रख छोड़ी थी अंदर थोड़ी-सी जगह,
अब वही जगह मेरे दर्द का कमरा निकली।

तू जो आई भी कभी, थक के ही आई होगी,
तेरी आँखों में भी आराम का सपना कम था।

मैंने समझा कि ग़ुस्सा ही तेरा पूरा सच है,
बाद में जाना कि उसमें भी बहुत रोना था।

घर में हम दोनों की हालत बड़ी मिलती-जुलती,
बस तू ताने में जली, मैं ख़ामुशी में जला।

अब जो बाकी है, उसी को लिए फिरते हैं हम,
तू भी बोझिल-सी रही, मैं भी अधूरा-सा रहा।

१३.
तकलीफ़ ही सच्ची साथी है

कई शामों से यही हाल है, बातें कम हैं,
घर के सामान में बस चुप्पियाँ ज़्यादा मिलें।

मैंने पूछा— “चलो, थोड़ी हवा खा आएँ!”
तूने कहा कि “थक गई हूँ”... और मामला खत्म।

एक ही शहर में थे, एक ही घर में भी रहे,
फिर भी मिलने की हमें कितनी मशक्कत करनी पड़ी!

मैंने अपने ही घर में बहुत दरवाज़े खोले,
दिल का कमरा मगर तुझ तक कभी पहुँचा ही नहीं।

अब तो लगता है कि तकलीफ़ ही सच्ची साथी है,
लोग बदलते रहे, दर्द वहीं टिक कर बैठा।

१४.
तेरी दूरी ने मौसम को दिसंबर कर दिया

रात गहरी थी, मगर नींद कहीं और गई,
मैं तेरी पीठ से दुनिया का सफ़र नापता रहा।

एक ही रज़ाई में भी ठंड बहुत बाकी थी,
तेरी दूरी ने ही मौसम को दिसंबर कर दिया।

मैंने करवट भी बदली, तो यही सोच के, कि
कहीं तेरी तरफ़ जाना कोई जुर्रत न लगे।

रात की आख़िरी घड़ी में मुझे ये समझ आया,
जिस्म पास हो तो क्या, मन अगर ताबूत बने।

सुबह उठकर भी वही दर्द तह करके पहना,
जैसे शर्ट भी यहाँ दुख के मुताबिक़ हों।

१५.
तू शब्दों में टूटी, मैं नज़र में टूटा

मैंने पूजा की जगह बस तेरा चेहरा देखा,
और समझा कि यही दुख मेरी किस्मत होगा।

घर में भगवान भी होंगे, तो बड़े खामोश होंगे,
इतनी अरदास के बाद भी यहाँ क्या बदला है!

मैंने अगरबत्ती जलाई, तो धुआँ सीधा न उठा,
जैसे दुआ भी कहीं बीच में अटकती जाती।

तू भी माथे पे दुपट्टा लिए कुछ माँग रही थी,
मैं भी तेरी ही तरह कुछ न मिल पाने में था।

अब ये मालूम हुआ, हम तो बड़े मिलते-जुलते थे,
बस तू शब्दों में टूटी, मैं नज़र में टूटा।

१६.
दर्द वज़नी था

मैंने हँस कर भी कई बार ये हालत ढँकी,
लोग समझे कि मैं खुश हूँ, मुझे फ़ुर्सत होगी।

मैंने मज़ाकों में जो दर्द छुपाया था वर्षों,
अब वही जुमले अकेले में मुझे काटते हैं।

घर के लोगों को बड़ी आदत है कि सामान्य लगें,
आदमी रो भी रहा हो, तो उसे ठीक कहो।

मैंने खुद पर भी कभी-कभी तरस कम खाया,
क्योंकि अपने ही मज़ाक़ों में फँसा रहता था।

अब जो बचा है, तो हँसी भी बहुत हल्की निकली,
दर्द वज़नी था, उसी ने मुझे गंभीर किया।

१७.
थकी हुई उम्मीदें

अब हमें एक-दूसरे से शिकायत कम है,
बस बहुत-सी थकी हुई उम्मीदें हैं।

तेरे 'ठीक है' में भी कुछ टूटने की गूँज रही,
मेरे 'कुछ नहीं' में भी इक पूरा समंदर था।

हमने जो माँगा था शादी से, मिला कम ही सही,
पर जो पाया है, वो खोने से भी भारी निकला।

मैंने सोचा था कि दूरी से सुकूं आएगा,
दूरी आई, तो वही दर्द और साफ़ दिखा।

अब जो ज़िंदा है, तो बस एक अजब जिद ज़िंदा है,
कि किसी रोज़ तुझे फिर से नरम देख सकूँ।

१८.
जंग लगी कील

घर में सबकुछ अपनी जगह पे सजा हुआ है,
बस मेरा मन है कि अब भी कहीं पड़ा हुआ है।

तेरी अलमारी में तह, मेरी मेज़ पे बिल,
यही बाँटकर हमने गृहस्थी को निभाया है।

मैंने ख़र्चों की तरह दर्द भी गिनने चाहे थे,
पर वो बढ़ता गया, खाते में समाया ही नहीं।

जो बचा है, वही तकलीफ़ का सबसे पक्का हिस्सा,
जैसे दीवार में जंग लगी कील अड़ी रह जाए।

अब मैं घर भी हूँ, मुसाफ़िर भी, थका भी, चुप भी,
कितने किरदारों में बँटकर मैं अकेला निकला।

१९.
रस्में ही आख़िरी भाषा

मैंने तेरे लिए अब भी चाय उसी मग में रखी,
जिसमें पहले कभी बातें घुला करती थीं।

तूने पी भी, तो बिना देखे, बिना कुछ बोले,
जैसे रस्में ही यहाँ आख़िरी भाषा बची हों।

मैंने जाना कि मुहब्बत का यही अंतिम रूप है,
काम करते रहो, पर दिल का जिक्र न करो।

घर में बर्तन भी बड़े विनम्र हो गए हैं अब,
किसी का गिरना भी चुपचाप सुना जाता है।

अब जो बचा है, तो सेवा है, ज़रा-सा लिहाज़,
और उसी लिहाज़ में दबी हुई हज़ार टीसें!

२०.
टूटा रिश्ता अचानक नहीं टूटता

मैं तेरे दर्द को कम समझता रहा शायद,
तू मेरे दर्द को ताना समझती रही।

हम दोनों ने बहुत देर से ये जाना आकर,
टूटा रिश्ता भी अचानक नहीं टूटता है।

रोज़ थोड़ा-सा क्षरण, रोज़ ज़रा-सी चुप्पी,
रोज़ एक कम नज़र, रोज़ एक बात अधूरी।

मैं अगर समय पे समझ पाता तेरी थकावट को,
तू अगर कम-से-कम मेरी हँसी पढ़ लेती।

अब जो बचा है, उसी को लिए फिरते हैं हम,
वरना पहले जो था, वो बहुत पीछे छूट गया।

२१.
तकलीफ़ में भी एक रौनक थी

जब कभी घर में अकेला मैं हुआ करता हूँ,
तेरी आहट भी बड़ी याद से आती है मुझे।

तेरे होने से जो तकलीफ़ थी, अब मालूम हुआ
उसमें एक किस्म की रौनक भी छिपी रहती थी।

अब न तेरा कटाक्ष है, न तेरा 'रहने दो',
और ये ख़ाली-सा घर मुझसे ही भरता नहीं।

मैंने सोचा था कि राहत होगी तन्हा होकर,
तन्हाई ने ही समझाया कि 'तू अभी ज़िंदा है!"

जो बचा है, वही दर्द है— ये सही भी है, मगर
दर्द में भी तेरा होना मुझे छोड़े नहीं।

२२.
अंदरूनी आँसू

मुझको अब रोना नहीं आता खुली आँखों से,
मैंने आँसू भी बहुत अंदरूनी कर डाले हैं।

रात की नींद में कुछ भी नहीं मिलता मुझको,
बस तेरे नाम के धागे से बँधी जाग है मिलती।

मैंने तकिये में छुपाए थे कई छोटे दुख,
सुबह देखा, तो वो चादर पे नक़्श बन बैठे।

घर में अब कोई भी नहीं पूछता— "ठीक हो न?"
शायद चेहरों ने भी आदत से जवाब सीख लिया।

अब जो जीता हूँ, तो बस इस लिए जीता हूँ मैं,
कि कहीं एक अदद उम्मीद अभी मरनी न रहे।

२३.
दर्द ने साफ़ नज़र दी

मैंने अपनी ही नज़र में कई हिस्से खो दिए,
तूने भी शायद मुझे पूरा कभी देखा नहीं।

जो मैं बाहर से संभलता हूँ, वो अंदर से नहीं,
मैंने बस गिरते हुए भी अदब बचा रखी है।

घर में चलते हुए अब मुझको यही लगता है,
मैं किसी और के दुःख में किरदार निभा रहा हूँ।

तू भी शायद यही सोचती होगी कभी,
कि ये आदमी तो वही है, पर वही क्यों नहीं।

अब जो बाकी है, उसी से ही पहचान बनी है,
दर्द ने हमको बहुत साफ़ नज़र दे डाली।

२४.
दो नरम लफ़्ज़ काफ़ी थे

कितना कम चाहिए था हमें घर बने रहने को,
दो नरम लफ़्ज़, ज़रा वक़्त, ज़रा धैर्य काफ़ी था।

हमने दुनिया के लिए कितनी बड़ी चीज़ें चाहीं,
अपने बीच की मगर छोटी-सी गरमी खो दी।

मैंने सोचा था कि मेहनत से सबकुछ भर जाएगा,
दिल की दरारों में पगारें नहीं जातीं लेकिन।

तूने समझा था कि सख़्ती से मकां टिक जाएगा,
घर की नींव में मगर लहजा भी रखना होता है।

हमने सीखा तो बहुत, पर बहुत देर से सीखा,
जो बचा है, वही दर्द है—ये किताबी नहीं, सच है।

तेरी तरफ़ देख के अब इतना ही महसूस हुआ,
हमने मिलकर ही ये ख़ाली-सा जहान रचा है।

२५.
दर्द नहीं बदलते

अब न चाहूँ, तो भी तेरी ही तरफ़ मन जाता है,
दर्द की भी कोई आदत-सी बनी रहती है।

तेरा नाम अब भी बहुत धीरे से लेता हूँ मैं,
जैसे टूटा हुआ शीशा कहीं फिर बज न उठे।

मैंने सोचा कि तुझे भूलना आसान होगा,
फिर तेरी चाल, तेरी आँख, तेरी थकन याद आई।

कितनी अजीब बात है, चोट भी तुझसे प्यारी,
मरहमों में भी मुझे तेरा ही लहजा चाहिए।

अब जो बचा है, वही एक तरह की वफ़ा है,
हम नहीं मिलते, मगर दर्द नहीं बदलते।

तेरी खामोश नज़र आज भी मुझ तक आती है,
जैसे सूखे हुए कुएँ में कहीं पानी हो थोड़ी।

२६.
एक फीकी-सी दुआ

मैंने चाहा था कि आख़िर में सुकूं बचा होगा,
आख़िर में आ के तो बस दर्द ही जमा निकला।

जो भी टूटा था, उसे जोड़ने की कोशिश में,
हमने अपने ही कई हिस्से गिरा डाले थे।

तूने मुझको भी कभी पूरी तरह छोड़ा नहीं,
मैंने तुझको भी कभी दिल से रुख़सत न किया।

इसी आधे-से बचेपन में हम अटके रहे,
न जुदाई हुई पूरी, न मुलाक़ात हुई।

अब मैं ये मान चुका हूँ कि यही अंत नहीं,
दर्द लंबे हैं, मगर लोग उन्हीं में जीते हैं।

जो बचा है, वही दर्द है, मगर इसी में कहीं
एक फीकी-सी दुआ अब भी छुपी बैठी है।

२७.
दर्द में तहज़ीब बची है

अब तलक जो भी बचा है, वो न रिश्ता है, न ग़म, सिर्फ़
कुछ अधूरी-सी मुहब्बत है, कुछ आदत, कुछ चुभन बाकी है।

एक ही छत तले हमने बहुत मौसम देखे,
अब तो मौसम भी नहीं आते, बस दिन कटते हैं।

मैंने तुझको भी बहुत देर से समझना चाहा,
तूने मुझको भी बहुत देर से पढ़ना सीखा।

हमने झगड़ों को दबाया, चुप्पियों को पाला,
फिर उन्हीं चुप्पियों ने मिलकर मकां खा डाला।

मैं जो अब भी तेरे लिए दरवाज़ा धीरे खोलूँ,
ये कोई कम नहीं कि दर्द में तहज़ीब बची है।

तू अगर आज भी थककर कभी मेरा नाम ले,
मैं उसी पल में पुराना-सा पिघल जाऊँगा।

जो बचा है, वही दर्द है, और यही सच भी सही,
क्योंकि बची हुई चीज़ों में ही असली बात रहती है।

कुछ चुनिंदा शे’र

१.

जो बचा है, वही दर्द है—ये बात अब समझी है,
रिश्ते अक्सर टूटते नहीं, बस धीरे-धीरे खाली होते हैं।

२.

तेरा होना अब भी मेरे दिन में शामिल है,
बस पहले सुकून था, अब एक भारीपन है।

३.

घर अब भी वहीं है, चीज़ें भी, दिनचर्या भी,
बस जो पहले घरपन था, वही कहीं खो गया।

४.

मैंने तेरे बाद नहीं, तेरे साथ रहकर तन्हाई सीखी है,
ये हुनर दुनिया नहीं, शादी सिखाती है।

५.

पुरानी तस्वीरों का सबसे बड़ा दुख ये नहीं कि वो पुराने हैं,
दुख ये है कि उनमें हम सचमुच खुश दिखते हैं।

६.

मैं अब भी तेरे लिए चाय उसी तरह बनाता हूँ,
शायद आदतें दिल से ज़्यादा वफ़ादार होती हैं।

७.

तेरी आवाज़ अब भी मेरे नाम को पहचानती है,
बस उसमें पहले वाली गर्मी नहीं बची।

८.

अब घर में कोई बड़ा तूफ़ान नहीं उठता,
बस भीतर ही भीतर सब कुछ ढहता रहता है।

९.

मैंने रोना कम कर दिया है,
अब आँसू भी सोच-समझ कर आते हैं।

१०.

तेरे ‘ठीक हूँ’ और मेरे ‘कुछ नहीं’ ने मिलकर
इस शादी का पूरा सच छुपा लिया।

११.

अब तुझसे नाराज़ भी नहीं हो पाता,
थकान कई बार ग़ुस्से से बड़ी हो जाती है।

१२.

हम दोनों ने शायद एक-दूसरे को बहुत देर से समझा,
और तब तक समझने लायक बहुत कुछ टूट चुका था।

१३.

मैं तुझे भूलना नहीं चाहता,
बस तुझसे कम दुखी होना चाहता हूँ।

१४.

घर में अब आवाज़ कम है,
पर चुप्पी पहले से कहीं ज़्यादा भारी है।

१५.

तू पास है, पर पहले जैसी नहीं;
मैं वही हूँ, पर पहले जितना नहीं बचा।

१६.

मैंने अपने हिस्से की उम्मीद बहुत धीरे-धीरे छोड़ी,
ताकि टूटने की आवाज़ बच्चों तक न जाए।

१७.

तेरे रहते हुए भी मैं कई बार तुझे याद करता हूँ,
ये कैसी मौजूदगी है जो कमी बन गई।

१८.

रिश्ते की आख़िरी साँसें बहुत शराफ़त से चलती हैं,
बाहर से कुछ भी टूटा हुआ नहीं लगता।

१९.

मैंने बहुत बार सोचा कि अब कुछ बचा नहीं,
फिर तेरी थकान देखी और दिल फिर पिघल गया।

२०.

बच्चों की हँसी ने हमको कई साल और जोड़े रखा,
वरना हम दोनों कब के अपनी-अपनी तरफ़ गिर चुके होते।

२१.

तेरे ताने भी अब याद आते हैं कभी-कभी,
ख़ाली घर में आवाज़ का कोई भी रूप अच्छा लगता है।

२२.

मैंने सीखा है कि टूटना हमेशा शोर से नहीं होता,
कई बार आदमी बहुत चुप रहकर भी बिखर जाता है।

२३.

तेरी पीठ मेरी रातों की सबसे लंबी सड़क रही है,
मैं उसी को देखते-देखते बूढ़ा हुआ हूँ।

२४.

अब मैं तुझे मनाने की कोशिश कम करता हूँ,
कुछ दरवाज़े आदत से खुलते हैं, चाहत से नहीं।

२५.

जो प्यार नहीं कह पाया, वही सबसे गहरा था,
कहे हुए शब्द तो अक्सर झगड़ों में खो गए।

२६.

मैंने अपनी हँसी को भी सँभाल कर रखना सीख लिया,
घर में हर उजाला सबको रास नहीं आता।

२७.

तेरे बिना दुख है, तेरे साथ भी दुख था,
शायद मुद्दा तू नहीं, मेरी उम्मीदें थीं।

२८.

मैं अब भी दरवाज़ा धीरे से बंद करता हूँ,
दर्द के बाद भी तहज़ीब बची रह जाए, तो अच्छा लगता है।

२९.

तूने जो न कहा, वही आज तक मेरे पास रखा है,
अनकहे शब्द बहुत लंबी उम्र के होते हैं।

३०.

रात को करवट बदलने की भी एक भाषा होती है,
मैंने तेरी चुप्पियों से व्याकरण सीखी है।

३१.

हम दोनों ने मिलकर घर बनाया ज़रूर,
बस उसमें एक-दूसरे के लिए जगह छोटी रख दी।

३२.

मैं अब पहले जैसा दुखी नहीं,
अब दुख मेरे स्वभाव में शामिल हो गया है।

३३.

तू अगर हँस भी दे कभी, मैं चौंक जाता हूँ,
इस घर में ख़ुशी अब घटना-सी लगती है।

३४.

घर की सबसे चुप चीज़ घड़ी नहीं होती…
वो दो लोग होते हैं, जो कभी बहुत बोलते थे।

३५.

मैंने तुझे दोष देना बहुत पहले छोड़ दिया,
अब दर्द को ही इस कहानी का लेखक मानता हूँ।

३६.

तेरे हाथ की दवा ने जिस्म को राहत दी होगी,
दिल अब भी उसी कमरे में बुख़ार लिए बैठा है।

३७.

कई बार लगता है कि हम दोनों अच्छे लोग हैं,
बस एक-दूसरे के लिए सही वक़्त पर नरम न हो सके।

३८.

मैंने अपने आँसू बाथरूम के नल के हवाले किए,
मर्द होने की भी कुछ घरेलू शर्तें होती हैं।

३९.

जो बचा है, वही दर्द है—पर अजीब बात ये है,
मैं उसी दर्द को कभी-कभी सीने से लगाता हूँ।

४०.

तेरे पास बैठने की इच्छा अब भी होती है,
बस अब मैं पहले इजाज़त अपने दिल से लेता हूँ।

४१.

हमने साथ रहते-रहते दूरी को घर का हिस्सा बना लिया,
अब नज़दीकी लौटे भी, तो अजनबी लगेगी।

४२.

मैंने ख़र्चे कम किए, आवाज़ कम की, उम्मीद कम की,
फिर भी इस घर का बोझ हल्का नहीं हुआ।

४३.

तेरे होने का दुख भी एक सहारा है,
कम-से-कम दर्द को कोई नाम तो मिला।

४४.

तेरी आँखों में थकान है, मेरी आँखों में पानी,
हम दोनों ही हार कर भी निभा रहे हैं।

४५.

अब मैं तस्वीरों से बातें करता हूँ,
थोड़ा महँगा पड़ता है लोगों से उम्मीद करना।

४६.

जो बातें हमें बहुत पहले कह देनी चाहिए थीं,
वही बातें अब कहने लायक नहीं रहीं।

४७.

मैंने तुझे कभी पूरी तरह छोड़ा नहीं,
बस अपने दुख को तेरे नाम से अलग लिखना सीख लिया।

४८.

घर में अब भी तेरी पसंद का मग रखा है,
आदमी कई बार चीज़ों से ज़्यादा वफ़ादार नहीं होता।

४९.

तूने मेरी कमज़ोरी बहुत कम देखी होगी,
मैंने उसे हमेशा पानी पीकर टाल दिया है।

५०.

अब न तुझे समझाने की ज़िद है, न खुद को साबित करने की,
थका हुआ आदमी आख़िर में बस चुप हो जाता है।

५१.

मैंने अपने हिस्से का प्यार कभी वापस नहीं माँगा,
घर में माँगी हुई चीज़ें अजीब लगती हैं।

५२.

रिश्ते की आख़िरी राख में हाथ डाला, तो जाना...
अंदर अब भी थोड़ी-सी गर्मी बची हुई थी।

५३.

मैंने तुझसे कम, वक़्त से ज़्यादा हार मानी है,
हम दोनों बस उसके हाथों अलग-अलग टूटे।

५४.

घर की सारी चीज़ें बच गईं,
बस एक-दूसरे के लिए हमारा धैर्य कम पड़ गया।

५५.

जो बचा है, वही दर्द है, और उसी में तेरी जगह भी,
इसलिए ये तकलीफ़ पूरी तरह बुरी नहीं लगती।

५६.

तेरे बिना जीना आसान नहीं होगा, ये पता है, पर
तेरे साथ जीना आसान था, ऐसा भी नहीं।

५७.

तूने जो प्यार नहीं कहा, मैं अब भी वही सुनता हूँ,
आदमी आख़िर तक अपने भ्रम से वफ़ा निभाता है।

५८.

मैंने रातों को बहुत छोटा दिखाया है लोगों के सामने,
असल में कई रातें मुझसे बड़ी निकलीं।

५९.

हमने रसोई, किस्तें, बच्चे, बिल— सब संभाले,
बस दिल की छोटी मरम्मत टलती रही।

६०.

अब जो याद आता है, वो कोई बड़ा हादसा नहीं,
छोटी-छोटी बातें हैं, जो बार-बार चुभती हैं।

६१.

मैंने खुद को अक्सर यही समझाया है,
दर्द बचा है, तो इसका मतलब रिश्ता पूरी तरह मरा नहीं।

६२.

तेरी चुप्पी ने मुझे जितना अकेला किया,
उतना शायद पूरी दुनिया भी न कर पाती।

६३.

अगर कभी तेरी थकान मेरा नाम पुकारे,
मैं अब भी बिना हिसाब के तेरे पास आऊँगा।

६४.

अब मुझे समझ आया कि माफ़ करना और भूलना अलग हैं,
मैंने शायद पहला सीख लिया, दूसरा नहीं।

६५.

मैंने तकलीफ़ को इतने बरस साथ रखा,
अब वो भी किसी अपने की तरह लगती है।

६६.

तेरी आँखों की पुरानी नरमी अब भी मुझे याद है,
इसी वजह से तेरा आज का ठंडा होना दुखता है।

६७.

रिश्ते की सारी आग बुझने के बाद जो बचा,
उसी राख में बैठकर मैं अपना नाम ढूँढ़ता हूँ।

६८.

मैं अब पहले जैसा उम्मीद से भरा नहीं,
पर पूरी तरह बेमानी भी नहीं हुआ हूँ।

६९.

घर में अब भी तेरा कप, तेरी चप्पल, तेरी खुशबू है,
आदमी चला जाए तो चीज़ें बड़ा काम करती हैं।

७०.

मैंने तुझे कई बार बहुत सामान्य दिखाया है,
ताकि दुनिया तेरा दर्द न पढ़ ले मेरे चेहरे से।

७१.

अब अगर पूछो कि प्यार है क्या?
तो कहूँगा— “हाँ, बस थका हुआ, टूटा हुआ, चुप!”

७२.

तेरे साथ की सबसे बड़ी विडंबना यही रही,
मैंने जितना तुझे समझा, उतना कह न सका।

७३.

जो बचा है, वही दर्द है, और वही मेरी पूँजी भी,
इसी से मैं अब भी तेरी तरफ़ नरम पड़ जाता हूँ।

७४.

हम दोनों की हार में कोई एक विजेता नहीं,
घर ऐसे ही टूटा करते हैं— बिना ताली के!

७५.

मैंने हर बार घर लौटते हुए यही सोचा,
शायद आज कुछ कम दुखेगा, और वही दिन मुश्किल निकला।

७६.

तू अगर एक बार सच-सच रो लेती सामने,
शायद मैं भी अपने भीतर इतना सूखा न रहता।

७७.

आख़िर में यही समझ आया— हम बचे तो सही…
बस जो बचा है, वही दर्द है, और वही कहानी है।

3.
जब तू सो जाती है

जब तू सो जाती है,
तब पहली बार
तेरा चेहरा मुझसे लड़ना बंद करता है।

तेरी भौंहों की गाँठ ढीली पड़ जाती है,
होठों पर दिनभर की कड़वाहट
धीरे-धीरे उतरने लगती है,
और मैं
तुझे वैसे देखता हूँ
जैसे बहुत बरस बाद
किसी पुराने शहर का असली नक्शा मिला हो।

दिन में जो औरत
मुझे कटाक्षों, हिसाबों, शिकायतों,
और ‘तुम कभी नहीं बदलोगे’
जैसे वाक्यों में मिलती है,
वही रात में
तकिये पर सिर रखते ही
फिर से इंसान लगने लगती है।

जब तू सो जाती है,
मैं पहली बार
तेरे चेहरे पर थकान पढ़ पाता हूँ।

वो थकान
जो शायद मुझसे भी पुरानी है,
शायद इस शादी से भी,
शायद उन सपनों से भी
जो तूने अपने मायके की छत पर खड़े होकर देखे होंगे।

मैं सोचता हूँ,
दिनभर तू जो कुछ कहती है,
उसमें कितना गुस्सा होता है
और कितना टूटना?
कितना ताना
और कितनी निराशा?
कितना मेरा दोष
और कितना तेरी अपनी अधूरी ज़िंदगी का हिसाब?

जब तू सो जाती है,
मैं तुझे माफ़ नहीं करता—
न खुद को;
बस थोड़ा-सा समझने लगता हूँ।

तेरे बालों की कुछ लटें
गाल पर चली आती हैं;
मेरा हाथ कई बार उठता है
उन्हें हटाने के लिए
मगर मैं रोक लेता हूँ…
अब प्यार भी
अनुमति माँगता है।

मैं बस देखता रहता हूँ।
सोचता हूँ—
दिन में जो औरत
मेरी हर बात काट देती है,
रात में इतनी बेख़बर कैसे हो जाती है?
जिसे मेरे देर से आने,
कम कमाने,
ग़लत रखने,
ग़लत बोलने,
ग़लत साँस लेने तक से शिकायत रहती है,
वही इतना निश्चिंत होकर
मेरे पास कैसे सो सकती है?

शायद इसलिए...
क्योंकि नफ़रत भी
आख़िरकार थक जाती है;
या शायद इसलिए...
क्योंकि दिल के बहुत भीतर
अब भी मुझपर
थोड़ा-सा यक़ीन बचा है।

जब तू सो जाती है,
मैं तुझे वैसा देखता हूँ
जैसी तू शायद कभी थी—
वो लड़की,
जो चाय बनाकर पूछती थी—
"ज़्यादा गरम तो नहीं?"

वो पत्नी,
जो मेरी शर्ट की सिलवटें ठीक करती थी;
वो हमदम,
जो मेरा चेहरा देखकर
दिन का हाल समझ लेती थी।

फिर मैं खुद को देखता हूँ।
सोचता हूँ—
क्या मैं भी वैसा ही रह गया हूँ?
या मैंने भी
तेरे प्यार को
अपनी चुप्पी, अपनी थकान,
अपने देर से लौटने,
अपने मज़ाकों,
अपने टाले हुए संवादों से
धीरे-धीरे कम किया है?

जब तू सो जाती है,
मैं यह भी समझता हूँ
कि हमारा रिश्ता पूरी तरह मरा नहीं है।
मरे हुए रिश्तों को
सोए हुए चेहरों पर
इतनी मासूमियत नहीं मिलती।

मैं कई रातों में
तेरे पास लेटे-लेटे
एक अजीब दुआ करता हूँ—

कि सुबह जब तू उठे,
तो तेरा गुस्सा थोड़ा देर से आए;
तेरी आवाज़ में
बस एक बार पुरानी नरमी लौट आए;
तू मुझे काम की तरह नहीं,
आदमी की तरह पुकारे।

मगर सुबह
अक्सर सुबह ही रहती है—
रसोई होती है,
बच्चों की आवाज़ें होती हैं;
गैस, चाय, टिफ़िन,
स्कूल, ऑफिस, बिल, थकान…
और तू फिर वही हो जाती है
जिससे मैं दिनभर बचता हूँ
और रात भर प्यार करता हूँ।

जब तू सो जाती है,
तब मुझे पहली बार यक़ीन होता है
कि मैं तुझसे अब भी मोहब्बत करता हूँ।
और उसी वक़्त
सबसे ज़्यादा दुख भी होता है…
क्योंकि जिस औरत से मैं अब भी मोहब्बत करता हूँ,
वो मुझे
ज़्यादातर तब मिलती है
जब उसे पता ही नहीं होता
कि मैं उसे देख रहा हूँ।

भाग-6

एक छत, दो अजनबी

१.
घर का पता खो-सा गया

एक ही छत है, मगर घर का पता खो-सा गया,
तू भी यहीं है, मैं भी यहीं हूँ, क्या हो-सा गया।

हमने सामान बचाया, दर-ओ-दीवार बचाए,
बस जो रिश्ता था हमारे बीच, वो खो-सा गया।

रात भर पंखा चला, नींद मगर आई नहीं,
एक बिस्तर था, मगर फासला सौ-सा गया।

मैंने सोचा था कि घर लौट के सुकून मिलेगा,
दर खुला, कमरा खुला, दिल मगर सो-सा गया।

अब जो बचा है, वही दर्द का नक्शा निकला,
एक ही छत थी, मगर उसमें कोई रो-सा गया।

२.
घर में भी अजनबी हैं

रोज़ गलियारे में हम यूँ ही गुज़र जाते हैं,
जैसे दफ़्तर में दो लोग सामने आते हैं।

तेरी आहट भी अब अपनापन नहीं लाती है,
बस मुझे याद दिलाती है कि घर में भी अजनबी हैं।

मैंने रुक कर कई बार तुझे देखा चुपके,
तूने जैसे मुझे देखा ही नहीं, बढ़ती गई।

दरमियान अपने ही घर में ये कैसा रस्ता है,
जहाँ मिलते तो हैं, पर नज़रें नहीं मिलतीं।

अब तो हालत ये है, आवाज़ भी दूँ तो डरूँ,
नाम लेना भी यहाँ हद से गुज़र जाना

३.
रूहें सफ़र करती रहें

एक बिस्तर है, मगर नींदें अलग रहती हैं,
तेरी करवट में दुआएँ, मेरी करवट में धुआँ।

मैंने चाहा कि तुझे छू के ज़रा चैन मिले,
हाथ बढ़ता भी नहीं, दिल को मना कर सोता हूँ।

रात की सबसे बड़ी चोट ये होती है शायद,
जिस्म पास हों, मगर रूहें सफ़र करती रहें।

तकिए जानें कि कितनी बात दबाकर रखी है,
सुबह चादर पे ही सिलवट की ज़ुबां मिलती है।

हमने शादी को निभाया भी बहुत अदब से,
बस मुहब्बत को कभी करवट बदलने न दिया।

४.
चाय ठंडी हुई, शाम भी ठंडी

दो कप चाय के आज भी मेज़ पे रखे जाते हैं,
बस वही बात नहीं, जो कभी घुलती थी उनमें।

मैंने पूछा भी नहीं, तूने बताया भी नहीं,
चाय ठंडी हुई और शाम भी ठंडी निकली।

पहले भापों में बहुत-सी नरमी होती थी,
अब तो कप से भी तेरे लहजे की ठंडक उठती है।

मैंने तश्तरी में रखी चीनी को देखा देर तलक,
ज़िंदगी इतनी भी मीठी नहीं बची थी शायद।

एक चुस्की में जो पहले तेरा होना मिलता,
अब वही चाय मुझे घर की थकान लगती है।

५.
बस हमारे ही चेहरों पे उजाला कम था

त्यौहार आया, दिये जले, मिठाइयाँ रखी गईं,
बस हमारे ही चेहरों पे उजाला कम था।

हमने बच्चों के लिए हँस के तस्वीरें खिंचवाईं,
फ्रेम के बाहर मगर दोनों बहुत थकते थे।

तेरे कपड़ों में चमक थी, मेरी आँखों में धुंध,
जैसे त्यौहार में भी आदमी अंदर से सूना हो।

पूजा के बाद जो सन्नाटा उतरा घर पर,
लगा भगवान भी शायद हमें देखकर चुप थे।

एक ही छत के तले रस्में तो सारी निभीं,
बस वो दिल नहीं आया, जो कभी साथ मनाता था।

६.
हमसे सँभाला नहीं जाता

दीवारों पे लगी तस्वीरें बड़ी बातें करती हैं,
उनमें हम हँसते हैं, यहाँ बस निभाते हैं।

शादी वाले उस फ़्रेम को मैं कई बार देखूँ,
सोचता हूँ कि वो लड़का मैं ही था क्या सचमुच?

तेरे गालों पे जो तब रोशनी ठहरी रहती,
अब वही रोशनी बच्चों की कॉपियों में रह गई।

मैंने धूलें तो बहुत बार उन फ़्रेमों से झाड़ीं,
दिल पे जमी हुई धूल उतारी नहीं जाती।

घर की दीवारों ने इतिहास संभाल कर रखा,
वर्तमान हमसे सँभाला नहीं जाता अब।

७.
कब हुआ ये सब?

कब हुआ ये सब, मुझे ठीक से मालूम नहीं;
कब हँसी कम हुई, कब बात अधूरी निकली।

कब तेरे ‘सुनो’ में वो पुराना-सा अपनापन गया,
कब मेरे ‘ठीक हूँ’ में बहुत सारा झूठ आ गया।

कब एक कमरे में दो लोग अलग-अलग रहने लगे,
कब ये घर, घर से ज़्यादा इंतज़ार लगने लगा।

कब रसोई, किस्त, चुप्पी, फ़र्ज़ इतने बड़े हुए;
कब मुहब्बत छोटी होकर कोने में बैठ गई।

कब हुआ ये सब, कोई तारीख़ नहीं मिलती,
बस इतना है कि अब पहले-सा कुछ भी नहीं।

८.

घर का असल चेहरा

घर के बाहर हम अभी भी बहुत अच्छे लगते हैं,
घर के अंदर वही लोग एक-दूजे से बचे रहते।

मेहमानों के लिए आवाज़ में शक्कर भी रखी,
अपने हिस्से की मिठास मगर कब की चुक गई।

तूने चाय भी बनाई, मैंने मुस्कान भी रखी,
लोग बोले— “क्या जोड़ी है!”… और हम चुप रहे।

दर खुला, लोग गए, घर का असल चेहरा लौटा,
जैसे मंच से उतरकर कोई कलाकार थक जाए।

इक अजब बात है, दुनिया को भरोसा है अभी;
हम तो कब के अपने ही सामने टूट चुके हैं।

९.
आधी-आधी ही यहाँ हर चीज़

रात गहरी हो, तो सन्नाटा बहुत बोलता है,
पंखे की आवाज़ भी कुछ पूछती लगती है।

मैंने अँधेरे में कई बार तेरा चेहरा सोचा,
पास थी तू, मगर वो चेहरा कहीं और गया था।

खिड़की आधी थी खुली, आधा-सा चाँद उतर आया,
आधी-आधी ही यहाँ हर चीज़ क्यों बच पाई है?

मैंने करवट भी बहुत सोच के बदली रातों में,
तेरी नींदों की हिफ़ाज़त भी अजीब काम रहा।

नींद आए, तो कहूँ भी कि मैं ज़िंदा हूँ अभी,
वरना जागी हुई रातें मुझे कम कर देती हैं।

१०.
एक-दूजे को जीना सीखा ही नहीं

हमने जिम्मों को निभाया, दफ़्तर, बच्चों, बिलों को;
बस एक-दूजे को जीना कभी सीखा ही नहीं।

तेरे हिस्से में रसोई थी, मेरे हिस्से में रास्ते,
दोनों थकते भी रहे, दोनों समझे न गए।

हमने फ़र्ज़ों की इमारत तो बहुत ऊँची की,
उसकी नींव में मगर बैठकर बात ही न की।

अब तो हालत ये है, कामों में मुलाक़ात हुई,
'दूध लेते आना' ही एक प्यार-सा वाक्य लगा।

घर ने हमसे बहुत कुछ लिया, बहुत कुछ पाया;
बस जो दिल थे, वही ठीक से इस्तेमाल न हुए।

११.

तेरी आँख से यक़ीं उठ गया

तेरे चेहरे की वो नरमी मुझे अब भी याद है,
जिसमें घर लौटते ही मेरा दिन पिघल जाता था।

अब वही चेहरा मुझे देख के ठहरता भी नहीं,
जैसे भीड़ में कोई राहगीर गुज़र जाता हो।

मैंने पूछा भी नहीं, तूने बताया भी नहीं,
कब तेरी आँख से वो पुराना यक़ीं उठ गया।

मुझको अब भी तेरी थकन पे बहुत रहम आता है,
दर्द ये है कि मुझे ये भी छुपाना पड़ता है।

कितना मुश्किल है किसी को अब भी चाहना इतने बाद,
जब वही शख़्स तुझे अपना कहे बिना गुज़र जाए।

१२.
इतनी बड़ी ख़ामोशी

हम जो कहना थे, वही बात कभी कह न सके,
और जो कह दी गई, उससे बहुत कुछ टूट गया।

मैंने कई बार तेरे गुस्से में थकन पढ़नी चाही,
तूने मेरी चुप्पी में घमंड ही देखा होगा।

एक ही घर में इतने ग़लत मतलब पनपे,
जैसे बातों की जगह काँटे उगाए हों हमने।

अब पछतावा भी अजीब चीज़ है, देर से आता,
दरवाज़ा बंद हो, तब दस्तकें सुनाई दें।

काश उस वक़्त ज़रा बैठ के रो लेते दोनों,
शायद इतनी बड़ी ख़ामोशी न पालते फिर हम।

१३.
दर्द भी अजीब वफ़ा निभाता है

मैं अब भी तुझसे कभी-कभी उतना ही दुखता हूँ,
जितना पहले तेरे एक प्यार से भर जाता था।

तू मेरी है भी नहीं, फिर भी तेरा-सा लगता,
दर्द भी कितनी अजीब वफ़ा निभाता है।

तेरे नाम की जगह अब मैं ख़ुदा का नाम लेता हूँ,
क्योंकि दुआओं में भी तेरा ही चेहरा आता है।

मैंने सीखा कि मोहब्बत का भी ये अंत हुआ,
चाहतें बचती रहें, हक़ नहीं बचता उनका।

अब ये हालत है कि तेरी भी ख़ुशी माँगूँ, तो
अपने हिस्से की उदासी और गहरी लगती है।

१४.
घर में रहकर भी घर नहीं मिलता

घर में रहकर भी मुझे घर नहीं मिलता अक्सर,
जैसे पनाह हो मगर चैन न हो उस छत में।

दर खुलते हैं, बत्तियाँ जलती हैं, चीज़ें अपनी हैं;
फिर भी अजनबीयत का अँधेरा कम नहीं होता।

मैंने सोफ़े पे, बरामदे में, कमरे में, मेज़ पे;
हर जगह बैठ के देखा— तू नहीं थी कहीं भी।

एक मकां और किसी घर में बहुत फ़र्क़ है यार,
ये मुझे देर से इस उम्र ने आकर समझाया।

अब तो हालत है कि छुट्टी भी सज़ा लगती है,
जब तुम्हारे ही साथ दिनभर अजनबी रहना हो।

१५.
घर के सामान ख़ामोश गवाह

घर के सामान बड़े ख़ामोश गवाह निकले हैं,
कप, कुर्सी, आईना, परदा— सबने देखा है।

उस पुराने मग में अब भी तेरी उँगलियों की आदत
मुझको रोज़ाना बहुत छोटी-सी चोट देती है।

आईने ने मुझे कम, वक़्त को ज़्यादा दिखाया,
चेहरे बूढ़े हुए, रिश्ते की झुर्रियाँ गहरी थीं।

परदे हिलते हैं, तो लगता है कोई बोल पड़ेगा,
फिर वही सन्नाटा आकर सब इरादे पी जाता।

घर की चीज़ों ने हमें हमसे ज़्यादा जाना है,
हम तो बस अपने ही दुख में उलझे रह गए।

१६.
तेरी मौजूदगी का मातम

मैंने तेरी मौजूदगी का भी मातम देखा है,
तू थी घर में, मगर दिल में तेरा आना न हुआ।

ये जुदाई बड़ी अजीब है, बिछड़ना भी नहीं,
और जो साथ है, उसे साथ कहूँ तो झूठ लगे।

मैंने चुपचाप तेरा नाम कई बार लिखा है,
फिर मिटाया कि कहीं दर्द उजागर न हो।

घर में चलते हुए अक्सर मुझे ये लगता है,
मैं किसी ख़त्म हुए किस्से की अंतिम पंक्ति हूँ।

अब तो रोना भी नहीं, बस एक थकान बाकी है,
मातमों की भी कभी कोई तहज़ीब होती है!

१७.
रूह को पनाह नहीं

अब मुझे छूने से पहले भी हवा सोचती है,
तेरे पास आने में इतनी मनाही क्यों है।

एक ही कमरा, मगर साँस भी बाँट कर लेनी है,
ये कैसा प्यार था, जो इजाज़तों में बँट गया!

मैंने आँखों से कई बार तुझे छूना चाहा,
तेरी पलकों ने मगर रास्ता वापस कर दिया।

अब तो हाथों ने भी तहज़ीब बहुत सीख ली है,
दिल से पहले वो भी रुक जाते हैं तुझ तक जाते।

कितनी सर्दी है कि रज़ाई में भी जगह कम है,
जिस्म पास हैं, मगर रूह को पनाह ही नहीं।

१८.
कुछ रिश्ते बच्चों से चलते हैं

हमने बच्चों के लिए घर को संभाले रखा,
और खुद अपने ही हिस्से से उतरते गए।

माँ-बाप वाली तस्वीर में हम ठीक दिखते हैं,
शौहर-बीवी वाली तस्वीर धुंधली पड़ गई।

उनकी हँसी ने कई बार बड़ी दरारें ढँकीं,
वरना दीवारें तो कब की सच उगल देतीं।

हमने बच्चों को दिया— साथ, सबक, स्कूल, सलीक़ा।
बस ये न सिखा पाए कि दिल कैसे बचाते हैं।

अब वो बड़े हो रहे हैं, और हम समझ रहे हैं—
कुछ रिश्ते बच्चों से चलते हैं, दिल से नहीं।

१९.
दिल का कमरा न गर्मा सका

मैं बरामदे में खड़ा हूँ, तू रसोई में कहीं,
एक ही शाम है, मगर दो जगह ढलती है।

दर पे चाभी भी मेरी है, लौटना मेरा भी है,
फिर भी अपने ही मकां में कोई मेहमान-सा हूँ।

मैंने सोचा था कि बाहर की थकन घर पे उतरे,
घर की दहलीज़ पे आकर वही बढ़ जाती है।

तेरे चूल्हे की आँच और मेरी जेब की तपिश,
दोनों मिलकर भी न गर्मा सके दिल का कमरा।

अब ये हालत है कि लौटूँ, तो भी क्या फ़र्क़ पड़े,
घर मुझे देख के भी वैसा ही चुप रहता है।

२०.
दिल की खिड़कियों पे जाले

एक ही कमरे में हम दो अलग मौसम ठहरे,
तेरी तरफ़ धूप भी थी, मेरी तरफ़ धुंध रही।

मैंने कुछ पूछा, तो तूने बहुत सामान्य कहा,
उस सामान्य में ही कितनी उदासी निकली।

तेरा चेहरा भी कई बार मुझे अपना लगा,
फिर उसी चेहरे पे एक अजनबी पर्दा आया।

हमने कमरों को सजाया, पर ये न समझ सके,
दिल की खिड़कियों पे भी जाले चढ़ जाते हैं।

अब ये हालत है कि तेरे पास बैठा भी रहूँ,
मन की ठंडक मुझे खुद से ही सिमटा देती।

२१.
रिश्ते की अंतिम अवस्था

अब हमारे बीच रस्में हैं, रिवाज़ हैं, लिहाज़ है;
जिसे मुहब्बत समझता था, वो तो बहुत दूर गई।

तूने पूछा— "दवा खा ली?" और मैंने 'हाँ' कर दिया,
बस इसी तरह की बातें भी गनीमत लगतीं।

मैंने दरवाज़ा तेरे लिए अभी भी धीरे खोला,
शायद आदत ही सही, पर यही नरमी बची।

अब न रूठना है, न मनना है, न उलझना है,
रिश्ते की अंतिम अवस्था बड़ी सलीकी से आती है।

कितना कम बोलते हैं हम, और फिर भी घर भरा है,
लगता है चुप्पी भी अब पूरा सामान रखती है।

२२.
सेवा और प्यार में फ़र्क़

मैं जो बीमार पड़ा, तूने दवा रख दी थी,
बस उसी हाथ में पहले-सा दुलार नहीं था।

मैंने चेहरा भी तेरा पढ़ना चाहा था, मगर
उसमें फ़र्ज़ था बहुत, दर्द का इज़हार नहीं।

तेरी चिंता भी बड़ी शालीन, ठहरी, सीमित;
जैसे मेहमान के लिए कोई इंतज़ाम किया जाए।

मैंने समझा कि अभी कुछ तो बचा होगा शायद,
फिर दवा खत्म हुई, बात भी वहीं खत्म हुई।

अब मुझे फ़र्क़ समझ आने लगा है धीरे,
सेवा और प्यार में कितना-सा, मगर कितना है।

२३.
एक पुकार और सही

तू अगर एक बार बहुत नरमी से मेरा नाम ले,
मैं अभी भी उसी लम्हे में पुराना हो जाऊँ।

मैंने दिल को बहुत समझाया कि अब सब ख़त्म हुआ,
दिल ने बस इतना कहा— "एक पुकार और सही!"

तेरे लहजे की वो गर्मी कहीं रखी होगी अभी,
मैं उसी चीज़ पे बरसों से भरोसा किए हूँ।

अब तो तेरे भी होठों पे थकन बैठी रहती,
फिर भी उनमें से कभी-कभी दुआ झाँकती है।

कितनी छोटी-सी तमन्ना है मेरी इस उम्र में,
तू मुझे एक दफ़ा 'सुनो' कह दे, बस उतना काफी।

२४.
हर मोड़ पे कम मिल पाए

अब मैं मान चुका हूँ कि यही सच भी सही,
हम मिले थे, मगर हर मोड़ पे कम मिल पाए।

मैंने तुझको भी बहुत अपने हिसाब से समझा,
तूने मुझको भी बहुत अपने दुखों से पढ़ा।

हमने दोनों ने बहुत देर से थकना जाना,
और तब तक ये सफ़र बहुत लंबा हो चुका था।

अब शिकायत भी नहीं, बस एक उदासी है,
जैसे कोई गीत हो, जो पूरा सुना न गया।

जो हुआ, सो हुआ, अब ये ही करम समझूँ,
कि अभी भी तेरे लिए मन में जगह बाकी है।

२५.
एक हलचल-सी बची

तेरे क़दमों की आहट भी अजनबी लगती है,
जैसे कोई नया किरायेदार घर में हो।

मैंने कितनी दफ़ा तेरे गुज़रने को देखा है,
हर दफ़ा लगा, कोई अपना भी नहीं था शायद।

तू मेरे पास से गुज़री, तो हवा बदली ज़रूर,
पर वो मौसम न आया, जो कभी साथ लाती थी।

एक ही घर के निवासी हैं, यही सच है बस,
बाक़ी रिश्ते का परिचय तो पुराना पड़ गया।

अब तो तेरे भी सफ़र में मैं ठहराव नहीं हूँ,
और मेरे घर में तू बस एक हलचल-सी बची।

२६.
काग़ज़ी खुशियाँ

शादी वाले एलबम को आज फिर खोला मैंने,
हर तस्वीर ने मुझसे बड़ी नरमी से पूछा—

“क्या यही तुम थे जो आँखों में उजाला लिए थे?”
मैंने पन्ना भी न पलटा, बस नज़र झुका ली।

तेरे हाथों की मेहँदी अभी तस्वीर में गहरी है,
हमारे बीच मगर रंग बहुत पहले उतर गए।

मैंने देखा कि वहाँ हम बहुत यक़ीन में थे,
ज़िंदगी को भी शायद हमसे हँसी आई होगी।

अब वो एलबम भी बहुत सोच के खोला जाता है,
काग़ज़ी खुशियाँ बहुत तेज़ चुभा करती हैं।

२७.
एक हँसी भी न बँटी

पहले हम अपने दुख पर भी हँस लिया करते,
अब हँसी आती है, तो डर-सा बहुत लगता है।

घर में खुशियों का ठहरना भी घटना हो जैसे,
कोई छोटा-सा चमत्कार हुआ हो शायद।

मैंने इक दिन तेरा पुराना-सा मज़ाक़ दोहराया,
तूने देखा तो सही, पर नज़रें मोड़ लीं।

हमने ग़म को तो बहुत साझा किया बरसों तक,
एक हँसी भी न बँटी— ये मुझे खलता है।

अब जो हँसता हूँ, तो अपनी ही हालत पे हँसूँ,
शादी ने मुझको बड़ा निजी-सा कॉमेडियन किया।

२८.
तेरे नाम में थोड़ा घर

तेरा नाम मेरे घर का पुराना पता रहा,
अब वही नाम बहुत धीरे से लेना पड़ता है।

मैंने कितनी दफ़ा चाहा कि पुकारूँ तुझको,
पर ये डर था कि जवाबों में अजनबीपन होगा।

तूने भी शायद मुझे अपने ही घर में धीरे-धीरे,
किसी ज़रूरी, मगर भावहीन चीज़-सा जाना।

अब पते भी नहीं मिलते नज़रों के रस्तों से,
घर के अंदर ही बहुत दूर पते पड़ते हैं।

मैं अभी भी तेरे नाम में थोड़ा घर ढूँढ़ूँ,
यही कम नहीं कि तलाशें अभी मरी नहीं हैं।

२९.
बहुत सभ्य तरीक़े से जुदाई

हमने लहजों में बहुत अदब बचाकर रखा,
इसी अदब में मगर दिल नहीं बच पाए दो।

न ऊँची आवाज़, न ग़ुस्से का कोई दृश्य-तमाशा,
बस बहुत सभ्य तरीक़े से जुदाई पलती रही।

तूने ‘रहने दो’ कहा, मैंने ‘ठीक है’ कर दिया,
यही दो वाक्य थे, जिनसे मकां ठंडा हुआ।

कितनी मर्यादित थी हम दोनों की बर्बादी भी,
किसी को मालूम न हुआ, हम कहाँ तक टूटे।

अब जो सोचूँ तो लगे, प्यार को थोड़ा बदतमीज़ होना था,
तभी शायद वो हममें ज़िंदा बचा रहता।

३०.
हार आधी तेरी थी, आधी मेरी

मैंने खुद को भी कई बार कठघरे में रखा,
हर शिकायत को तुझे दे के मैं बच न सका।

मैंने भी देर से घर आ के बहुत कुछ बिगाड़ा,
मैंने भी हँस के कई ज़रूरी सवाल टाले थे।

तूने भी दर्द को ताने की ज़बान दे डाली,
मैं भी चुप्पी को ढाल बनाकर जिया था।

अब जो पीछे मुड़ के देखूँ तो यही समझ आया,
हार आधी तेरी थी, आधी मेरी भी निकली।

फिर भी इतना तो है, हमने बुराई कम की,
बस भलाई में ही शायद बहुत दूरी रख दी।

३१.
ख़ामोशी से किया जाता है

मैं अभी भी तेरे लिए दरवाज़ा धीरे खोलूँ,
जैसे कुछ टूटा नहीं, बस बहुत थक गया हो।

तेरी चप्पल को वहीं सीधा करके रख देता हूँ,
आदमी कई बार मोहब्बत नहीं, आदत होता है।

तू अगर पानी माँगे, तो मैं पहले-सा उठ जाऊँ,
दर्द के बाद भी सेवा का चलन जाता नहीं।

घर के छोटे-से सलीक़े भी बड़े गहरे होते,
इन्हीं में कई बार बची हुई चाहत रहती है।

अब जो हम कुछ नहीं कहते, ये भी सच है, लेकिन
बहुत कुछ आज भी ख़ामोशी से किया जाता है।

३२.
पुकार की दहलीज़

तू अगर आज कभी थक के मेरा नाम पुकारे,
मैं उसी आवाज़ में अपना मकां ढूँढ़ लूँगा;

मैं अभी भी तेरे एक कोमल-से लहजे के लिए,
इन बरसों की उदासी को किनारे रख दूँ।

ये भी सच है कि मैं अब पहले-सा भोला नहीं,
फिर भी तेरी ज़रा नरमी पे पिघल जाता हूँ;

प्यार का आख़िरी क़तरा भी अजब चीज़ है यार,
सूखते-सूखते भी उसमें चमक रहती है।

मैंने सीखा कि कुछ रिश्ते ख़त्म होकर भी नहीं,
बस पुकार की किसी एक दहलीज़ पे ठहरे हैं।

३३.
घर बचाते हुए

एक ही छत, दो अजनबी— यही हासिल निकला;
सारा किस्सा तो इसी एक पंक्ति में सिमटा।

तू भी टूटी, मैं भी टूटा, घर भी आधा-सा रहा;
फिर भी दुनिया को लगे, सबकुछ बराबर होगा।

मैंने चाहा था कि आख़िर में कोई अर्थ बचे,
अर्थ कम, बस बहुत गहरा-सा असर बाकी है।

जो मुहब्बत थी, वो मरकर भी पूरी न मरी,
दर्द बनकर ही सही, साथ में ठहरी हुई है।

अब किताबों में नहीं, दिल में यही दर्ज रहेगा—
एक ही छत थी, मगर उसमें दो दुनिया रहती थीं।

तू अगर पूछे कभी— "हम कहाँ खो गए थे?"
मैं कहूँगा— "घर बचाते हुए, बस वहीं खोए थे!"

कुछ चुनिंदा शे’र

१.

एक ही छत तले रहकर भी हम इतने दूर हुए,
कि पता भी नहीं चला— घर कब सराय हो गया।

२.

तू सामने है, मगर पहले जैसी नहीं लगती,
जैसे अपना शहर हो, पर पता सब बदल गया हो।

३.

मैंने तेरी पीठ देख-देखकर बहुत रातें काटी हैं,
अब आधी दुनिया मुझे करवट जैसी लगती है।

४.

दो कप चाय रखे रहते हैं आज भी मेज़ पर,
बस अब कोई ‘सुनो’ उनमें चीनी की तरह नहीं घुलता।

५.

हमारे बीच अब लड़ाई भी नहीं होती,
थके हुए रिश्ते अक्सर शोर नहीं करते।

६.

मैं अब भी घर लौटते वक़्त थोड़ा सँवर जाता हूँ,
आदमी उम्मीद से आसानी से अलग नहीं होता।

७.

तेरी मौजूदगी अब भी कमी जैसी लगती है,
ये भी अजीब किस्म का रिश्ता है।

८.

दीवारों पे लगी तस्वीरें हमसे ज़्यादा सच्ची हैं,
उनमें मुस्कान है, यहाँ सिर्फ़ निभाव है।

९.

कभी-कभी सोचता हूँ, तू सच में बदली है,
या मेरी उम्मीदों की रोशनी कम हुई है।

१०.

घर में अब आवाज़ें कम हैं,
पर जो चुप्पी है, वो किसी चीख़ से कम नहीं।

११.

तेरे पास बैठना अब भी अच्छा लगता है,
बस दर्द ये है कि तुझे अच्छा नहीं लगता।

१२.

मैंने तेरी थकान को हमेशा ग़ुस्सा समझा,
तूने मेरी चुप्पी को लापरवाही पढ़ लिया।

१३.

हमारी शादी में सबसे पहले बात मरी थी,
बाक़ी चीज़ें उसके बाद धीरे-धीरे जाती रहीं।

१४.

एक ही बिस्तर पे सोते हुए भी ये समझ आया,
नज़दीकी का रिश्ता सिर्फ़ दूरी से नहीं टूटता।

१५.

तेरे 'ठीक हूँ' का दुख अब समझ में आता है,
कई बार आदमी सच से बचने को ठीक कहता है।

१६.

मैंने दरवाज़ा आज भी धीरे से बंद किया,
दर्द के बाद भी तहज़ीब बची रहे, तो अच्छा लगता है।

१७.

तू मेरे घर की सबसे बड़ी आदत रही है,
और आदतें बहुत आसानी से जाती नहीं।

१८.

कब हुआ ये सब, कोई तारीख़ नहीं मिलती,
टूटनें अक्सर कैलेंडर से बाहर होती हैं।

१९.

त्यौहार अब भी आते हैं, रोशनी भी आती है,
बस मेरे हिस्से का उजाला नहीं पहुँचता।

२०.

मैंने सोचा था कि वक्त सब ठीक कर देगा,
वक़्त ने बस हमें चुप रहना सिखाया।

२१.

तेरे बिना रहना मुश्किल होता, ये पता है,
तेरे साथ रहना आसान है, ऐसा भी नहीं।

२२.

घर का सबसे भारी सामान शायद सन्नाटा है,
उसे उठाने के लिए कोई हाथ नहीं होता।

२३.

तेरे नाम में अब भी थोड़ा-सा घर बचा है,
इसीलिए मैं उसे बहुत धीरे से लेता हूँ।

२४.

मैंने अपनी तकलीफ़ को बहुत सभ्य बना लिया,
ताकि घर का माहौल ख़राब न हो।

२५.

तूने पूछा नहीं, मैंने बताया नहीं,
दोनों ने मिलकर ही ये दूरी बनाई है।

२६.

अब न रूठना बचा, न मनाना, न शिकायत,
रिश्ते की आख़िरी उम्र बहुत शांत होती है।

२७.

मैंने कई बार तुझे छूने की जगह तेरे लिए पानी रखा,
क्योंकि कुछ प्यार हाथों से नहीं, आदतों से बचते हैं।

२८.

हम दोनों अच्छे लोग रहे होंगे शायद,
बस एक-दूसरे के लिए सही वक़्त पर नरम नहीं हो सके।

२९.

तेरी आहट अब भी पहचान लेता हूँ,
आदमी आख़िर तक किस-किस चीज़ से वफ़ा निभाता है।

३०.

अब अगर रोता भी हूँ, तो बहुत धीरे से…
घर में आँसू भी कई बार तमीज़ से बहते हैं।

३१.

एक ही कमरे में दो मौसम रह रहे हैं,
तू धूप है शायद, मैं धुंध-सा पड़ा हूँ।

३२.

मैंने तेरी थाली में नमक बढ़ाया है आज भी,
ये छोटी-छोटी बातें ही मुझे ज़िंदा रखती हैं।

३३.

घर की सबसे चुभती चीज़ कोई ताना नहीं,
वो पल है, जब सामने वाला कुछ भी न कहे।

३४.

मेरे पास अब तेरे लिए कोई लंबी शिकायत नहीं,
बस एक छोटा-सा दुख है, जो बहुत बड़ा हो गया।

३५.

तूने शायद मुझे छोड़ा नहीं, बस कम कर दिया,
मैंने शायद तुझे भुलाया नहीं, बस दबा दिया।

३६.

मैंने अपने दुख को बच्चों की हँसी के पीछे छुपाया,
अच्छे पिता कई बार अधूरे पति होते हैं।

३७.

तेरे साथ की सबसे बड़ी विडंबना यही रही,
मैं तुझे समझता बहुत था, कहता बहुत कम था।

३८.

मैं घर में रहता हूँ, पर कई बार लगता है,
जैसे अपनी ही जिंदगी में किरायेदार हूँ।

३९.

अब तुझसे नाराज़ होना भी थकान माँगता है,
मैंने ग़ुस्सा भी बचत में रखना सीख लिया है।

४०.

तेरे बिना भी कमरा पूरा नहीं लगता,
तेरे साथ भी मन पूरा नहीं होता।

४१.

मैंने तेरे लिए मग वही रखा है, जो तुझे पसंद था;
कुछ लोग नहीं, उनकी चीज़ें घर चलाती रहती हैं।

४२.

अब मेरे पास तुझसे कहने को बहुत कुछ है,
बस अब वो कहने की उम्र नहीं बची।

४३.

तू पास होती है, तो कमी लगती है,
तू दूर होती है, तो आदत सताती है।

४४.

मैंने समझा था कि मकान खरीदना बड़ी बात होगी,
अब समझा हूँ कि घर बनाना उससे भी कठिन था।

४५.

तेरी थकान पे मुझे आज भी रहम आता है,
दर्द ये है कि मैं ये कह नहीं सकता।

४६.

रात की आधी जाग में मैं अक्सर यही सोचता हूँ,
हम दो लोग थे, ये दो दुनिया कैसे बन गई।

४७.

हमारे घर की सबसे बड़ी कमी पैसे की नहीं थी,
हमने वक़्त और नरमी दोनों कम रखे।

४८.

तेरे 'रहने दो' ने जितना मुझको रोका है,
उतना शायद किसी दीवार ने भी नहीं।

४९.

मैंने तेरे लिए दरवाज़ा खोला, पानी रखा, लाइट बुझाई;
कई बार यही छोटे काम मेरा प्रेमपत्र रहे।

५०.

अब मुझे अपने ही घर में आवाज़ धीमी रखनी पड़ती है,
कहीं ख़ामोशी टूटकर बिखर न जाए।

५१.

तू अगर मेरे दुख का कारण भी है,
तो अजीब बात ये है कि राहत भी कभी-कभी तू ही लगती है।

५२.

मैंने कई बार खुद से पूछा— "क्यों रुका हूँ अभी तक?"
शायद दर्द भी तब तक रहता है, जब तक प्यार थोड़ा बाकी हो।

५३.

घर का दरवाज़ा, तेरी चप्पल, बच्चों की किताबें—
इन्हीं के बीच कहीं हमारा रिश्ता दबा पड़ा है।

५४.

तस्वीरों में जो हम हैं, उनसे मुझे जलन होती है,
उन्हें नहीं पता था कि आगे क्या होने वाला है।

५५.

अब मैं जल्दी माफ़ कर देता हूँ,
थका हुआ आदमी न्याय से ज़्यादा सुकून चाहता है।

५६.

मैंने कई साल तेरे गुस्से को तेरा स्वभाव समझा,
अब लगता है, वो भी तेरी टूटी हुई जगह थी।

५७.

एक छत तले रहना और साथ रहना,
इन दोनों में ज़िंदगी भर का फ़र्क़ निकला।

५८.

तू अगर अचानक बहुत नरमी से बात कर दे,
मैं अभी भी अपने सारे दुख भूल सकता हूँ।

५९.

मैं अब भी तुझसे कम, तेरी कमी से ज़्यादा दुखी हूँ,
अजीब है कि तेरी मौजूदगी भी कमी बन गई।

६०.

रिश्ते का अंत हमेशा विदा से नहीं होता,
कई बार लोग साथ रहकर भी ख़त्म हो जाते हैं।

६१.

मैंने अपने हिस्से की रातें बहुत धीरे-धीरे जलाई हैं,
इसलिए मेरी सुबहें हमेशा थकी हुई लगती हैं।

६२.

तेरे हाथ की चाय अब भी घर जैसी लगती है,
बस तेरे लहजे में वो घरपन नहीं आता।

६३.

कई बार लगता है कि तू भी मेरी तरह ही थकी है,
फर्क़ बस इतना है कि तू बोल के टूटती है, मैं चुप रहकर।

६४.

मैंने घर बचाने की इतनी कोशिश की,
कि कई बार खुद को बचाना भूल गया।

६५.

अब अगर प्यार है भी, तो बहुत धीमी आँच पर है,
रोटी नहीं, राख बनने के क़रीब।

६६.

तेरी चुप्पी ने मुझे जितना पढ़ाया है,
उतना शायद किसी किताब ने भी नहीं।

६७.

मैंने बहुत बार सोचा कि अब बस, अब नहीं!
फिर तेरे कमरे की हल्की-सी रोशनी दिख गई।

६८.

जो बचा नहीं, उसका दुख कम होता जाता है,
जो थोड़ा बचा हो, वही बहुत तड़पाता है।

६९.

मैंने तकलीफ़ को इतना अपना बना लिया है,
कभी-कभी वो भी तेरी तरह लगती है।

७०.

अब मेरे पास तुझे देने को तर्क नहीं,
बस थोड़ी-सी थकान, थोड़ी-सी वफ़ा बची है।

७१.

अगर कभी ये दीवारें सच बोलने लगें,
तो शायद हमारी चुप्पी से शुरु करें।

७२.

मैंने तेरी जगह किसी और से भरने की सोची भी नहीं,
कुछ खालीपन बहुत निजी होते हैं।

७३.

शादी ने मुझे सबसे अजीब हुनर ये दिया—
मैं मुस्कुराकर भी टूट सकता हूँ।

७४.

हम दोनों की कहानी में खलनायक कोई एक नहीं,
बस वक़्त, थकान और चुप्पी मिलकर भारी पड़ गए।

७५.

मैंने आज भी तेरे लिए जगह छोड़ी है बिस्तर में,
हालाँकि मुझे मालूम है— फासला वहीं रहेगा।

७६.

तेरे साथ की सबसे बड़ी पीड़ा यही है,
मैं अब भी तुझे पूरी तरह बुरा नहीं कह पाता।

७७.

घर में बची हुई नरमी बहुत छोटी चीज़ है,
पर कई बार वही आदमी को ज़िंदा रखती है।

७८.

मैंने तेरे 'कुछ नहीं' के पीछे बहुत कुछ सुना है,
इसीलिए तेरी चुप्पी कभी साधारण नहीं लगती।

७९.

अब अगर कोई पूछे—"तुम दोनों साथ हो?"
मैं कहूँगा— "हाँ, बस दिलों वाली दूरी मत पूछो!"

८०.

एक छत, दो अजनबी— ये सिर्फ़ शीर्षक नहीं,
ये कई घरों की बंद खिड़की की हवा है।

८१.

तेरे कमरे की हल्की-सी रोशनी देखकर कई बार
मैंने अपने भीतर अँधेरा थोड़ा कम महसूस किया।

८२.

अब भी अगर तू कह दे 'बैठो', मैं बैठ जाऊँगा,
मोहब्बत बूढ़ी हो सकती है, मरती मुश्किल से है।

८३.

मैंने अपने दुख को बहुत कम शब्द दिए हैं,
इसीलिए शायद वो इतना बड़ा हो गया।

८४.

हम दोनों बचे रहे, यही बड़ी बात है शायद,
कई रिश्ते तो इस चुप्पी में भी साँस नहीं ले पाते।

८५.

अगर इस कहानी का एक ही निष्कर्ष लिखना हो,
तो लिखना— एक छत थी, और दो लोग धीरे-धीरे अजनबी हुए।

4.
दीवारों के दरमियां

ये घर
ईंट, सीमेंट, पेंट और लकड़ी से नहीं बना…
ये घर
उन बातों से बना था,
जो हमने कभी कही थीं;
और उन बातों से भी,
जो हमें कहनी चाहिए थीं
पर हमने टाल दीं।

इन दीवारों के दरमियां
एक ज़माने में
हँसी रहा करती थी;
चाय की भाप उठती थी,
और उसके साथ
हमारी छोटी-छोटी बातें भी;
रसोई से रोटी की खुशबू आती थी
और मुझे लगता था
कि दुनिया चाहे कितनी भी मुश्किल हो,
घर लौटने लायक है।

फिर धीरे-धीरे
इन दीवारों ने सबकुछ देखा—

सुबह की चाय में उतरती खीज़,
गैस के पास खड़ी तुम्हारी थकान,
दफ़्तर से लौटे मेरे जूते,
डाइनिंग टेबल पर जमा सन्नाटा,
रिमोट को लेकर हुई बेवक़ूफ़ बहसें,
तुम्हारा 'रहने दो',
मेरा 'ठीक है',
बच्चों के सामने हमारी सभ्य मुस्कान,
और रात को बिस्तर पर
दो अलग-अलग दुनियाओं की करवटें।

इन दीवारों ने देखा
कि घर कैसे एकदम नहीं टूटता;
वो पहले आवाज़ खोता है,
फिर नरमी,
फिर मज़ाक,
फिर भरोसा,
फिर छूने की सहजता,
फिर नाम लेने का हक़…
और आख़िर में
बस साथ रहने की औपचारिकता बचती है।

मैंने इस घर में
बहुत सारी चीज़ें ठीक की हैं—
बल्ब बदले,
कुंडी सुधारी,
ईएमआई भरी,
स्कूल की फीस जमा की,
गैस बुक की,
पानी का मोटर देखा,
बरसात में बाल्टियाँ रखीं,
और कई बार
तुझे बिना बताए
तेरी चप्पलें सीधी कर दीं।

तूने भी बहुत कुछ संभाला है—
रसोई,
बच्चे,
दवाइयाँ,
साफ़-सफ़ाई,
त्यौहार,
रिश्तेदार,
मेहमानों के सामने घर की इज़्ज़त,
और शायद
अपनी टूटी हुई उम्मीदों के टुकड़े भी।

सच तो ये है
कि इस घर को
हम दोनों ने बहुत मेहनत से बचाया है,

बस
एक-दूसरे को बचा नहीं पाए।

इन दीवारों के दरमियां
मैंने तुझे सबसे ज़्यादा
तब समझा,
जब तू चिल्लाना छोड़ चुकी थी…
और शायद
तूने मुझे सबसे ज़्यादा
तब खो दिया,
जब मैंने सफ़ाई देना छोड़ दिया।

कहानी इतनी-सी नहीं है
कि तू बुरी थी
या मैं अच्छा था;
कहानी इतनी भी आसान नहीं
कि मैं बेबस था
और तू निर्दयी।
कहानी ये है,
कि हम दोनों
अपने-अपने दुखों के इतने भीतर चले गए,
कि एक-दूसरे तक लौटने का रास्ता भूल गए।

इन दीवारों के दरमियां
मैंने कई बार
अपना सिर टिकाकर सोचा है—
क्या सचमुच यही अंत है?

क्या एक शादी का अंतिम रूप
यही होता है—
एक ही छत?
एक ही पता?
एक ही रसोई?
एक ही बच्चों के स्कूल की फीस?
एक ही त्योहारों की तस्वीरें?
एक ही बिजली का बिल
और दो बिल्कुल अलग धड़कनें?

फिर भी
ये दीवारें मेरे लिए सिर्फ़ गवाह नहीं हैं—
ये मेरी शर्म भी हैं,
मेरा धैर्य भी,
मेरा मातम भी,
मेरी आख़िरी उम्मीद भी....

क्योंकि इन्हीं दीवारों के दरमियां
कभी तुमने मेरा नाम
इतनी मोहब्बत से लिया था,
कि मुझे अपना वजूद
पहली बार सुंदर लगा था;
इन्हीं दीवारों के दरमियां
कभी हमने बच्चों के नाम सोचे थे;
इन्हीं दीवारों के दरमियां
कभी देर रात मैगी बनाते हुए
इतनी हँसी आई थी

कि पड़ोसी ने दीवार थपथपा दी थी;
इन्हीं दीवारों के दरमियां
कभी तूने मेरा माथा छूकर कहा था—
“बुख़ार है तुम्हें!”
और मुझे लगा था
कि दुनिया में मेरा भी कोई है।

अब वही दीवारें
चुप खड़ी हैं....
बहुत शालीन,
बहुत संयमी,
जैसे उन्होंने कसम खाई हो
कि जो कुछ देखा है
किसी से नहीं कहेंगी।

मगर मैं जानता हूँ—
अगर कभी ये बोल पड़ीं,
तो सबसे पहले
तुम्हारा नाम नहीं लेंगी,
मेरा भी नहीं।
वे कहेंगी—
यहाँ दो लोग रहते थे
जो बुरे नहीं थे,
बस बहुत थके हुए थे;
जिन्होंने घर बचाने में
अपनी-अपनी आवाज़ खो दी;
जिन्होंने रसोई, किस्तें, ज़िम्मेदारियाँ, बच्चों की परीक्षाएँ,

त्यौहार, बुख़ार, स्कूल बस, गैस सिलिंडर,
रिमोट, रिश्तेदार, बजट,
सब संभाल लिया…
बस एक-दूसरे को नहीं संभाल पाए।

और शायद
यही इस किताब का
सबसे सच्चा, सबसे निर्दयी,
और सबसे मानवीय वाक्य है।

इन दीवारों के दरमियां
अब भी मैं रहता हूँ!
तू भी!
बच्चे भी!
सामान भी!
यादें भी!
और एक धीमा-सा दर्द भी…
जो हर कमरे में
अपना छोटा-सा बिस्तर बिछाए बैठा है।

अगर कोई मुझसे पूछे
कि इस घर में अब क्या बचा है…
तो मैं कहूँगा—
थोड़ी-सी तहज़ीब;
थोड़ी-सी आदत;
थोड़ी-सी सेवा;
थोड़ी-सी उम्मीद;

और बहुत सारा वह…
जो नाम नहीं लेता,
मगर हर रात
तकिये के नीचे आकर लेट जाता है।

यानी—
इन दीवारों के दरमियां
अब भी हम हैं….
बस
वैसे नहीं,
जैसे कभी हुआ करते थे।